ब्रह्मोवाच

मत्पुत्रो नारदः शप्तो गन्धर्वश्चोपबर्हणः । योगेन प्राणांस्तत्याज पुनः शापान्ममैव हि ॥१०॥
कालं लक्षयुगं व्याप्य स्थितिरस्य महीतले । शूद्रयोनिं ततः प्राप्य भविता मत्सुतः पुनः ॥११॥
अस्य कालावशेषस्य किंचिदस्ति द्विजोत्तम । तत्तु वर्षसहस्रं चैवाऽऽयुरस्यास्ति सांप्रतम् ॥१२॥
दास्यामि जीवदानं च स्वयं विष्णोः प्रसादतः । यथैनं न स्पृशेच्छापस्तत्करिष्यामि निश्चितम् ॥१३॥
नाऽऽगतो हरिरत्रेति त्वया यत्कथितं द्विज । हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विग्रहः कुत आत्मनः ॥१४॥
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः । सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः ॥१५॥
विषिश्च व्याप्तिवचनो नुश्च सर्वत्रवाचकः । सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुः प्रकीर्तितः ॥१६॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१७॥
कर्मारम्भे च मध्ये वा शेषे विष्णुं च यः स्मरेत् । परिपूर्णं तस्य कर्म वैदिकं च भवेद्द्विज ॥१८॥
अहं स्रष्टा च जगतां विधाता संहरो हरः । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याऽऽज्ञापरिपालकः ॥१९॥
कालः संहरते लोकान्यमः शास्ता च पापिनाम् । उपैति मृत्युः सर्वांश्च भिया यस्याऽऽज्ञया सदा ॥२०॥
सर्वेशा या च सर्वाद्या प्रकृतिः सर्वसूः पुरा । सा भीता यस्य पुरतो यस्याऽऽज्ञापरिपालिका ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—मेरे पुत्र नारद मेरे शापवश उपबर्हण नामक गन्धर्व हुए थे और पुनः मेरे शाप के कारण योग द्वारा प्राणत्याग किया था ॥१०॥ एक लाख युग के समय तक भूतल पर उनकी स्थिति रहेगी पश्चात् वे शूद्र-योनि में उत्पन्न होंगे। उसके अनन्तर पुनः मेरे पुत्र होंगे ॥११॥ हे द्विजोत्तम! इसलिए इनका कुछ ही काल अब अवशिष्ट रह गया है। इस समय इनकी आयु एक सहस्र वर्ष की शेष है ॥१२॥ भगवान् विष्णु की कृपा से मैं स्वयं इसे जीवदान दूंगा और ऐसा उपाय अवश्य करूँगा, जिससे इस देव-समुदाय को शाप का स्पर्श न हो। हे द्विज! आप ने जो यह कहा है कि भगवान् विष्णु यहाँ क्यों नहीं आये, सो ठीक नहीं है, क्योंकि हरि तो सर्वत्र विद्यमान हैं, वे ही सबके आत्मा हैं और आत्मा का शरीर कहाँ होता है? परब्रह्म तो स्वेच्छामय हैं। भक्तों पर कृपा करने के लिए शरीर धारण करते हैं। वे सनातन देव सर्वत्र हैं ॥१३-१५॥ विष् धातु व्याप्तिवाचक है और 'णु' का अर्थ सर्वत्र है। वे सर्वात्मा हरि सर्वत्र व्यापक हैं, इसलिए 'विष्णु' कहे गए हैं ॥१६॥ अपवित्र, पवित्र अथवा किसी भी दशा में जो पुण्डरीकाक्ष (कमलनेत्र) विष्णु का स्मरण करता है वह बाहर-भीतर दोनों ओर से शुद्ध हो जाता है ॥१७॥ द्विज! कर्मों के आरम्भ, मध्य और अन्त में जो विष्णु का स्मरण करता है, उसका वह वैदिक कर्म परिपूर्ण हो जाता है ॥१८॥ जगत् का रचयिता मैं (विधाता), संहार करने वाले हर और कर्मों के साक्षी धर्म जिनकी आज्ञा का पालन करते हैं ॥१९॥ जिनकी आज्ञा और भय से काल लोकों का संहार करता है, यम पापियों पर शासन करता है और मृत्यु सबके समीप पहुँचती है ॥२०॥ उसी भाँति सर्वेश्वरी, सर्वाद्या और सबको उत्पन्न करने वाली प्रकृति भी जिनके सामने भयभीत रहती तथा जिनकी आज्ञा का पालन करती है। (वे ही विष्णु सर्वात्मा एवं सर्वेश्वर हैं) ॥२१॥

महेश्वर उवाच

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भवान्। वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कः सार एव च ॥२२॥
शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य कस्त्वं नाम्ना च भो द्विज[1]। विभर्ष्यर्कातिरिक्तं च शिशुरूपोऽसि सांप्रतम् ॥२३॥
विडम्बयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम्। हृदिस्थं च न जानासि परमात्मानमीश्वरम् ॥२४॥
यस्मिन्गते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि। प्रयान्ति सर्वे तत्पचान्नरदेवानुगा इव ॥२५॥
जीवस्तत्प्रतिबिम्बश्च मनो ज्ञानं च चेतना। प्राणाश्चेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः ॥२६॥
निद्रा दया च तन्द्रा च क्षुत्तृष्णा पुष्टिरेव च। श्रद्धा संतुष्टिरिच्छा च क्षमा लज्जादिकाः स्मृताः ॥२७॥
प्रयाति यत्पुरः शक्तिरीश्वरे गमनोन्मुखे। एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याऽऽज्ञापरिपालकाः ॥२८॥
ईश्वरे च स्थिते देही क्षमश्च सर्वकर्मसु। गतेऽस्पृश्यः शवस्त्याज्यः कस्तं देही न[2] मन्यते ॥२९॥
स्वयं ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः। पादारविन्दमनिशं ध्यायते द्रष्टुमक्षमः ॥३०॥
युगलक्षं तपस्तप्तं श्रीकृष्णस्य च वेधसा। तदा बभूव ज्ञानी च जगत्स्त्रष्टुं क्षमस्तदा ॥३१॥

महेश्वर बोले—ब्रह्मा के पुत्रों में आप किसके कुल में उत्पन्न हुए हैं और वेदों का अध्ययन करके क्या तत्त्व समझा है! द्विज! आप किस मुनिवर्य के शिष्य हैं और आप का नाम क्या है? इस समय शिशुअवस्था में ही आप सूर्य से भी अधिक तेजस्वी दिखायी देते हैं।।२२-२३।। आप अपने तेज से देवताओं को भी तिरस्कृत कर रहे हैं; किन्तु सबके हृदय में अन्तर्यामी आत्मा रूप से विराजमान हमारे स्वामी सर्वेश्वर परमात्मा को नहीं जानते, यह आश्चर्य की बात है। ।।२४।। देहधारियों की देह से परमात्मा के निकल जाने पर देह गिर जाती है और सभी सूक्ष्म इन्द्रियवर्ग एवं प्राण उनके पीछे उसी तरह निकल जाते हैं जैसे राजा के पीछे उसके सेवक जाते हैं।।२५।। उन्हीं का प्रतिबिम्ब जीव है। मन, ज्ञान, चेतना, प्राण, इन्द्रियाँ, बुद्धि, मेधा, धृति, स्मृति, निद्रा, दया, तन्द्रा, क्षुधा, तृष्णा, पुष्टि, श्रद्धा, संतुष्टि, इच्छा, क्षमा और लज्जा आदि भाव उन्हीं के अनुगामी माने गए हैं। वे परमात्मा जब जाने को उद्यत होते हैं तब उनकी शक्ति आगे-आगे जाती है। उपर्युक्त सभी भाव तथा शक्ति उन्हीं परमात्मा के आज्ञापालक हैं।।२६-२८।। देह में उनके रहने पर ही प्राणी सभी कार्य करने में समर्थ होता है और उनके चले जाने पर शरीर अस्पृश्य और त्याज्य शव हो जाता है। ऐसे सर्वेश्वर शिव को कौन देहधारी नहीं मानता है? ।।२९।। जगत के विधाता एवं सबके रचयिता स्वयं ब्रह्मा भी उनके चरण कमल का रातदिन ध्यान करते हैं, किन्तु उनका दर्शन नहीं कर पाते हैं ।।३०।। भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए एक लाख युग तक तप करके ही ब्रह्मा ज्ञानी और जगत् की सृष्टि करने में समर्थ हुए हैं।।३१।। मैंने भी असंख्य काल तक भगवान् विष्णु की आराधना करते हुए

---

१ क. ०ज। विभास्यर्कातिरिक्तश्च। २ क. नमस्यते।

असंख्यकालं सुचिरं तपस्तप्तं हरेर्मया । तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले ॥३२॥
अधुना पञ्चवक्त्रेण यन्नामगुणकीर्तनम् । गायन्भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु ॥३३॥
मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्तनात् । शश्वज्जपन्तं तन्नाम दृष्ट्वा मृत्युः पलायते ॥३४॥
सर्वब्रह्माण्डसंहर्ताऽप्यहं मृत्युंजयाभिधः । सुचिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्तनात् ॥३५॥
काले तत्र विलीनोऽहमाविर्भूतस्ततः पुनः । न कालो मम संहर्ता न मृत्युर्यत्प्रसादतः ॥३६॥
गोलोके यः स वैकुण्ठे श्वेतद्वीपे स एव च । अंशांशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिंगवत्[1] ॥३७॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । अष्टाविंशतिमे शक्रे गते च ब्रह्मणो दिनम् ॥३८॥
एतत्संख्याविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः । पाते लोचनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मनः ॥३९॥
अहं कलानावृषभः कृष्णस्य परमात्मनः । पारं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि च किंचन ॥४०॥
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च शौनक । धर्मश्च वक्तुमारेभे यः साक्षी सर्वकर्मणाम् ॥४१॥

धर्म उवाच

यत्पाणिपादौ सर्वत्र चक्षुश्च सर्वदर्शनम् । सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च दुरात्मनः ॥४२॥

घोर तप किया, किन्तु मन को तृप्ति न प्राप्त हुई। भला मंगल से कौन तृप्त होता है? ॥३२॥ इस समय मैं पाँच मुखों से उनके नाम-गुणों का कीर्तन करते एवं गाते हुए सर्वत्र भ्रमण करता हूँ और सभी कर्मों में निःस्पृह रहता हूँ ॥३३॥ उनके नाम-गुणों के कीर्तन करने से मृत्यु भी मेरे पास नहीं फटकती; क्योंकि निरन्तर उनके नाम जपने वाले को देखकर मृत्यु भाग जाती है ॥३४॥ चिरकाल तक तपस्यापूर्वक उनके नाम-गुणों का कीर्तन करने से मैं समस्त ब्रह्माण्ड का संहर्ता तथा मृत्युञ्जय हुआ हूँ ॥३५॥ समय आने पर मैं उन्हीं में विलीन होता हूँ तथा उन्हीं से पुनः प्रकट हो जाता हूँ। उनकी कृपा से मैं मृत्यु और काल को जीत चुका हूँ ॥३६॥ ब्रह्मन्! जो श्रीकृष्ण गोलोक में हैं, वही वैकुण्ठ तथा श्वेतद्वीप में भी रहते हैं। जैसे अग्नि और उसके कण (चिनगारी) में कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार अंश और अंशी में भेद नहीं होता ॥३७॥ एकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। (प्रत्येक मन्वन्तर में दो इन्द्र व्यतीत होते हैं) अट्ठाईसवें इन्द्र के गत हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥३८॥ इस प्रकार ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु के समाप्त होने पर परमात्मा विष्णु के नेत्र की एक पलक गिरती है ॥३९॥ परमात्मा श्रीकृष्ण की कलाओं में मैं श्रेष्ठ कलामात्र हूँ; किन्तु उनकी महिमा का पार कौन पा सकता है? मैं तो कुछ भी नहीं जानता ॥४०॥ शौनक! वहाँ इतना कहकर शंकर जी चुप हो गये। अनन्तर समस्त कर्मों के साक्षी धर्म ने कहना आरम्भ किया ॥४१॥

धर्म बोले—जिनके हाथ और चरण सर्वत्र रहते हैं, आँख सब कुछ देखती है, वह सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्ष हैं और दुरात्माओं के लिए वे अप्रत्यक्ष हैं ॥४२॥ इस समय आपने जो कहा है कि 'विष्णु सभा में नहीं आये,

---

१ क. ०त्। इन्द्रायुश्चैव दि०।

अधुनाऽपि सभां विष्णुर्नायाति इति यद्वचः । त्वयोक्तं तत्कया बुद्ध्या मुनीनां च मतिभ्रमः ॥४३॥
महन्निन्दा भवेद्यत्र नैव साधुः शृणोति ताम् । निन्दकः श्रोतृभिः सार्धं कुम्भीपाकं व्रजेद्युगम् ॥४४॥
श्रुत्वा दैवान्महन्निन्दां श्रीविष्णोः स्मरणाद्बुधः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥४५॥
कामतोऽकामतो वाऽपि विष्णुनिन्दां करोति यः । यः शृणोति हसति वा सभामध्ये नराधमः ॥४६॥
कुम्भीपाके पचति स यावद्धि ब्रह्मणो वयः । स्थलं भवेदपूतं च सुरापात्रं यथा द्विज ॥४७॥
प्राणी च नरकं याति श्रुतं तत्रैव चेद्ध्रुवम् । विष्णुनिन्दा च त्रिविधा ब्रह्मणा कथिता पुरा ॥४८॥
अप्रत्यक्षं च कुरुते किंवा तं च न मन्यते । देवान्यसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः ॥४९॥
तस्यात्र निष्कृतिर्नास्ति यावद्वै ब्रह्मणः शतम् । गुरोर्निन्दां यः करोति पितुर्निन्दां नराधमः ।
स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५०॥
विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः । पोष्टा पाता भयत्राता वरदाता जगत्त्रये ॥५१॥
एषां च वचनं श्रुत्वा त्रयाणां विप्रपुंगव । प्रहस्योवाच तान्देवान्वाचा मधुरया पुनः ॥५२॥

ब्राह्मण उवाच

का कृता विष्णुनिन्दाऽहो हे देवा धर्मशालिनः । नाऽऽगतो हरिरत्रेति व्यर्थाऽऽकाशसरस्वती ॥५३॥
इति प्रोक्तं मया भद्रं ब्रूत धर्मार्थमीश्वराः । सभायां पाक्षिकाः सन्तो घ्नन्ति स्म शतपूरुषम् ॥५४॥

वह किस बुद्धि से कहा है? यह बात तो मुनियों की बुद्धि को भी भ्रम में डालने वाली है॥४३॥ जहाँ बड़ों की निन्दा होती है, वहाँ सज्जन लोग उसे नहीं सुनते हैं। क्योंकि सुनने वालों के साथ वह निन्दक कुम्भीपाक नरक में जाता है और वहाँ एक युग तक कष्ट भोगता रहता है॥४४॥ दैववश बड़ों की निन्दा सुन लेने पर विद्वान् लोग श्री विष्णु का स्मरण करके समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा दुर्लभ पुण्य प्राप्त करते हैं॥४५॥ जो इच्छा या अनिच्छा से भगवान् विष्णु की निन्दा करता है तथा जो नराधम सभा के बीच में बैठकर उस निन्दा को सुनता तथा हँसता है वह ब्रह्मा की आयु तक कुम्भीपाक नरक में पकता रहता है। द्विज! मद्यपात्र की भाँति वह स्थल भी अपवित्र हो जाता है॥४६-४७॥ वहाँ जाकर जो प्राणी भगवन्निन्दा सुनता है वह निश्चय ही नरक में पड़ता है। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने विष्णु की निन्दा के तीन प्रकार बताये थे—परोक्ष (आड़) में निन्दा करना, विष्णु को न मानना तथा अन्य देवों से उनकी तुलना करना—ये तीनों निन्दायें ज्ञानहीन नराधम करता है॥४८-४९॥ सौ ब्रह्मा की आयु तक भी उस (निन्दक) का नरक से उद्धार नहीं होता। इसी भाँति जो नराधम गुरु एवं पिता की निन्दा करता है वह कालसूत्र को प्राप्त होकर चन्द्र-सूर्य के समय तक वहीं पड़ा रहता है॥५०॥ विष्णु तीनों लोकों में सबके गुरु, पिता, ज्ञान-दाता, पोषक, पालक, भयत्राता तथा वरदाता हैं॥५१॥ इन तीनों की बातें सुनकर उस द्विजपुंगव ने हँसकर मधुरवाणी में उन देवों से कहा॥५२॥

ब्राह्मण बोले—हे धर्मशाली देवगण! मैंने विष्णु की क्या निन्दा की है? मैंने यही कहा कि—विष्णु यहाँ नहीं आये, अतः आकाशवाणी असत्य हो गई। आप लोग अधीश्वर हैं। धर्मतः कहिए; क्योंकि सभा में पक्षपात करने वाले व्यक्ति अपनी सौ पीढ़ियों का नाश कर डालते हैं॥५३-५४॥ आप लोग भावुक होकर कह

यूयं च भावुका ब्रूत विष्णुः सर्वत्र संततम् । इति चेत्तत्कथं याताः श्वेतद्वीपं वराय च ॥५५॥
अंशांशिनोर्न भेदश्चेदात्मनश्चेति निश्चितम् । कलां हित्वा निषेवन्ते सन्तः पूर्णतमं कथम् ॥५६॥
कोटिजन्मदुराराध्यमसाध्यमसतामपि । आशा बलवती पुंसां कृष्णं सेवितुमिच्छति ॥५७॥
किं क्षुद्राः किं महान्तश्च वाञ्छन्ति परमं पदम् । लब्धुमिच्छति चन्द्रं च बाहुभ्यां वामनो यथा ॥५८॥
यो विष्णुर्विषयी विश्वे श्वेतद्वीपनिवासकृत् । यूयं ब्रह्मेशधर्माश्च दिक्पालाश्च दिगीश्वराः ॥५९॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्चराचराः । एवं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेषु संततम् ॥६०॥
विश्वानां च सुराणां च कः संख्यां कर्तुमीश्वरः । सर्वेषामीश्वरः कृष्णो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६१॥
ऊर्ध्वं च सर्वब्रह्माण्डाद्वैकुण्ठं सत्यमीप्सितम् । तस्मादूर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनम् ॥६२॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः । सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥६३॥
गोलोके द्विभुजः कृष्णो राधाकान्तः सनातनः । गोपाङ्गनादिभिर्युक्तो द्विभुजैर्गोपपार्षदैः ॥६४॥
परिपूर्णतमं ब्रह्म स चाऽऽत्मा सर्वदेहिनाम् । स्वेच्छामयश्च विहरेद्रासे वृन्दावने सदा ॥६५॥
तज्ज्योतिर्मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । ध्यायन्ते योगिनः सन्तः संततं च निरामयम् ॥६६॥

रहे हैं कि विष्णु सर्वत्र हैं। यदि ऐसी बात है तो आप लोग वर माँगने के निमित्त श्वेतद्वीप में क्यों गये थे ? ॥५५॥ अंश और अंशी में भेद नहीं है तथा आत्मा में भी भेद का अभाव है, यदि यही आपका निश्चित मत है तो बताइए— श्रेष्ठ पुरुष कला (अंश) का त्याग करके पूर्णतम (अंशी) की उपासना क्यों करते हैं ? ॥२६॥ कोटि जन्मों में भी दुराराध्य और असज्जनों के लिए सदैव असाध्य भगवान् कृष्ण की ही सेवा करने के लिए लोगों को बलवती आशा प्रेरित करती है ॥५७॥ अपने दोनों हाथों से चन्द्रमा को प्राप्त करने की इच्छा करने वाले वामन (बौने पुरुष) की भाँति क्या छोटे क्या बड़े, सभी परम पद को चाहते हैं ॥५८॥ जो विष्णु हैं, वे एक विषय (देश) में रहते हैं। विश्व के अन्तर्गत श्वेतद्वीप में निवास करते हैं। आप ब्रह्मा, शिव, धर्म तथा दिशाओं के स्वामी दिक्पाल भी एक देश के निवासी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवेश, देवसमूह और चराचर प्राणी— ये सब भिन्न-भिन्न ब्रह्मांडों में अनेक हैं। उन ब्रह्मांडों और देवताओं की गणना करने में कौन समर्थ है ? उन सबके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए दिव्य विग्रह धारण करते हैं ॥५९—६१॥ सर्ववांछनीय सत्यलोक या नित्य वैकुंठधाम समस्त ब्रह्माण्ड से ऊपर है। उससे भी ऊपर पचास कोटि योजन के विस्तार में गोलोक (विराजमान) है ॥६२॥ वैकुण्ठ में लक्ष्मीकान्त सनातन भगवान् चतुर्भुज होकर निवास करते हैं । वहाँ सुनन्द, नन्द, और कुमुद आदि पार्षद उन्हें घेरे रहते हैं ॥६३॥ गोलोक में राधाकान्त भगवान् श्री कृष्ण दो भुजाओं से युक्त होकर निवास करते हैं। उन सनातन भगवान् को गोपांगनाएँ और दो भुजा वाले पार्षदगण सदैव घेरे रहते हैं ॥६४॥ वही श्रीकृष्ण परिपूर्णतम ब्रह्म हैं। वे समस्त देहधारियों के आत्मा हैं। वे स्वेच्छामय शरीर धारण करके वृन्दावन के रासमंडल में सदैव विहार करते हैं ॥६५॥ उन्हीं निरामय परमात्मा की मण्डलाकार ज्योति का, जो करोड़ों सूर्य की प्रभा के समान है, योगी एवं सन्त-महात्मा निरन्तर ध्यान करते हैं ॥६६॥ उनकी नवीन घनश्याम की भाँति श्यामल

नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥६७॥
किशोरवयसं शश्वच्छान्तं सस्मितमीश्वरम् । ध्यायन्ते वैष्णवाः[1] सन्तः सेवन्ते सत्यविग्रहम् ॥६८॥
यूयं च वैष्णवा ब्रूत कस्य वंशोद्भवो भवान् । शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्येत्येवं मां च पुनः पुनः ॥६९॥
यस्य वंशोद्भवोऽहं च यस्य शिष्यश्च बालकः । तस्येदं वचनं ज्ञानं देवसंघा निबोधत ॥७०॥
शीघ्रं जीवय गन्धर्वं देवेश्वर सुरेश्वर । व्यक्ते विचारे मूर्खः को वाग्युद्धे किं प्रयोजनम् ॥७१॥
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विप्ररूपी जनार्दनः । विरराम सभामध्ये प्रजहास च शौनक ॥७२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौ० ब्रह्मखण्डे विष्णुसुरसंघसंवादे
विष्णुप्रशंसाप्रणयनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

देवाः सार्धं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया । प्रययुर्मालतीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥१॥
ब्रह्मा कमण्डलुजलं ददौ गात्रे शवस्य च । संचारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः ॥२॥

कान्ति है। दो भुजाएँ हैं। वे पीताम्बर धारण किये हुए हैं। करोड़ों कन्दर्पों से भी सुन्दर हैं। लीलाधाम हैं। उनका रूप अत्यन्त मनोहर है। किशोर अवस्था है। वे नित्य शान्त परमात्मा मंद मुसकान की आभा बिखेरते रहते हैं। वैष्णव संत उन्हीं सत्यशरीर भगवान् का ध्यान-भजन करते हैं ॥६७-६८॥ आप लोग भी वैष्णव हैं और मुझसे बार-बार पूछ रहे हैं कि—'आप किस वंश के हैं और किस मुनिश्रेष्ठ के शिष्य हैं ॥६९॥ हे देवगण! मैं जिसके वंश में उत्पन्न हुआ हूं एवं जिसका बालक और शिष्य हूँ उन्हीं का यह वचन और ज्ञान है, ऐसा जानो ॥७०॥ देवेश्वर सुरेश! इस गन्धर्व को शीघ्र जीवित करो। विचार व्यक्त करने पर स्वतः ज्ञात हो जाता है कि कौन मूर्ख है और कौन विद्वान्। अतः वाग्युद्ध (जिह्वा की लड़ाई) करने की क्या आवश्यकता? ॥७१॥ शौनक! विप्रवेषधारी बालक जनार्दन इतना कहकर चुप हो गये और सभा के बीच ठठाकर हँस पड़े ॥७२॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में विष्णु-प्रशंसा-प्रणयन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

अध्याय १८

उपबर्हण को जीवनदान

सौति बोले—भगवान् विष्णु की माया से मोहित हुए ब्रह्मा, शिव तथा देवगण ब्राह्मण के साथ मालावती के निकट पहुँचे ॥१॥ ब्रह्मा ने उस शव के शरीर पर अपने कमण्डलु का जल छिड़क दिया और उसमें मन का

---

१ क ०वाः शान्ताः से० ।

ज्ञानदानं ददौ तस्म ज्ञानानन्दः शिवः स्वयम् । धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानं च ब्राह्मणः ॥३॥
वह्निदर्शनमात्रेण बभूव जठरानलः । कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम् ॥४॥
तस्य वायोरधिष्ठानाज्जगत्प्राणस्वरूपिणः । निःश्वासस्य च संचारः प्राणानां च बभूव ह ॥५॥
सूर्याधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्बभूव ह । वाक्यं वाणीदर्शनेन शोभा श्रीदर्शनेन च ॥६॥
शवस्तथाऽपि नोत्तस्थौ यथा शेते जडस्तथा । विशिष्टबोधनं प्राप चाधिष्ठानं विनाऽऽत्मनः ॥७॥
ब्रह्मणो वचनात्साध्वी तुष्टाव परमेश्वरम् । स्नात्वा शीघ्रं सरित्तोये धृत्वा धौते च वाससी ॥८॥

मालावत्युवाच

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम् । विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले ॥९॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च सर्वेषां सर्वकर्मसु । विद्यमानमदृष्टं च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ॥१०॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका ॥११॥
जगत्स्रष्टा स्वयं ब्रह्मा नियतो यस्य सेवया । पाता विष्णुश्च जगतां संहर्ता शंकरः स्वयम् ॥१२॥
ध्यायन्ते यं सुराः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । सिद्धाश्च योगिनः सन्तः संततं प्रकृतेः परम् ॥१३॥
साकारं च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम् । वरं वरेण्यं वरदं वराहं वरकारणम् ॥१४॥
तपः फलं तपोबीजं तपसां च फलप्रदम् । स्वयं तपःस्वरूपं च सर्वरूपं च सर्वतः ॥१५॥

संस्कार करके उसके शरीर को सुन्दर बना दिया ॥२॥ स्वयं ज्ञानानन्द शिव ने उसे ज्ञान-दान दिया; धर्म ने धर्म-ज्ञान और ब्राह्मण ने जीवदान दिया ॥३॥ अग्नि के दर्शन मात्र से उसमें जठराग्नि उत्पन्न हो गया। काम के दर्शन से समस्त कामनाओं का उदय हो गया ॥४॥ संसार के प्राणस्वरूप वायु से निःश्वास और प्राणों का संचार होने लगा ॥२॥ सूर्याधिष्ठान मात्र से उसकी आँखों में देखने की शक्ति आ गयी। वाणी (सरस्वती) की दृष्टि पड़ने से वाक्शक्ति और श्री के दर्शन से शोभा उत्पन्न हो गयी। इतने पर भी वह शव जड़ की भाँति सोया ही रहा; उठ न सका। क्योंकि आत्माधिष्ठान के बिना विशिष्ट बोधन (चेतना) की प्राप्ति कहाँ से हो सकती है? ॥६-७॥ तब ब्रह्मा के कहने पर उस पतिव्रता ने नदी के जल में शीघ्र स्नान करके युगल धौत वस्त्र पहनकर परमेश्वर की स्तुति करना आरम्भ किया ॥८॥

मालावती बोली—समस्त कारणों के कारण उस परमात्मा की वन्दना करती हूँ, जिसके बिना इस जगत् के सारे प्राणी शव के समान हैं ॥९॥ वह निर्लिप्त है। सबके समस्त कर्मों में सर्वत्र और सदा साक्षी रूप से विद्यमान रहता है। किन्तु सब लोग उसे नहीं देख सकते ॥१०॥ उस ब्रह्म ने सबकी आधारभूता उस परात्परा प्रकृति की सृष्टि की है, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि की जननी है ॥११॥ स्वयं जगत्स्रष्टा ब्रह्मा उस ब्रह्म की सेवा में नियत रूप से लगे रहते हैं। विष्णु और स्वयं जगत् के संहर्त्ता शिव भी उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं ॥१२॥ प्रकृति से परे उस परमेश्वर का ध्यान समस्त देव, मुनिगण, मनु, सिद्ध, योगी और सन्त महात्मा किया करते हैं ॥१३॥ वह साकार, निराकार, श्रेष्ठ, स्वेच्छामय, व्यापक, उत्तमोत्तम, वरदाता, वर देने के योग्य, वर का कारण, तप का फल, तप का बीज, तप का फलदायक, स्वयं तपःस्वरूप तथा सर्वरूप है ॥१४-१५॥ वह सबका आधार, सब का बीज,

सर्वाधारं सर्वबीजं कर्म तत्कर्मणां फलम् । तेषां च फलदातारं तद्बीज[1] क्षयकारणम् ॥१६॥
स्वयं तेजः स्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । सेवा ध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना ॥१७॥
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । अतीव कमनीयं च रूपं तत्र मनोहरम् ॥१८॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् ॥१९॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम् । किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम् ॥२१॥
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने । कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिषेवितम् ॥२२॥
कुत्रचिद्गोपवेषं च वेष्टितं गोपबालकैः । शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे[2] रम्ये वृन्दावने वने ॥२३॥
निकरं[3] कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम् । गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने ॥२४॥
वेणुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसंमोहकारणम् । निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम् ॥२५॥
लक्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितं च चतुर्भुजैः । कुत्रचित्स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च ॥२६॥
श्वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिषेवितम् । कुत्रचित्स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम् ॥२७॥
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम् । स्वात्मनः षोडशांशेन सर्वाधारं परात्परम् ॥२८॥

कर्म तथा उन कर्मों का फल, फल देने वाला तथा कर्मबीज का नाशक है ॥१६॥ वह स्वयं तेजःस्वरूप और भक्तों पर कृपा करने के लिए शरीर धारण करता है। क्योंकि बिना शरीर के भक्तगण उसकी सेवा और ध्यान-पूजा कैसे करेंगे? ॥१७॥ वह तेजोमण्डलाकार, करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, अत्यन्त कमनीय (सुन्दर) एवं मनोहर रूप-वाला है ॥१८॥ नवीन घन के समान श्यामलवर्ण, शारदीय कमल की भाँति नेत्र, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मन्द मुसकान से युक्त मुख तथा करोड़ों कामों को भी लज्जित करने वाला लावण्य उसकी सहज विशेषतायें हैं तथा वह चन्दन-चर्चित समस्त अंगों से युक्त है। उसके संपूर्ण अंग रत्नों के भूषणों से भूषित हैं। उसकी दो भुजाएँ हैं, हाथ में मुरली है, अंगों पर पीताम्बर शोभा पाता है तथा किशोरावस्था है। वह शान्त और राधा का कान्त है। वह अनन्त आनन्द से परिपूर्ण है। कहीं वह निर्जन बन में गोपियों से घिरा रहता है तो कहीं रास के मध्य में राधा से सुसेवित होता रहता है ॥१९-२२॥ कहीं गोप बनकर गोप-बालकों के साथ वृन्दावन नामक वन में, जो सैकड़ों शिखर वाले गोवर्धन के कारण उत्कृष्ट शोभा से युक्त एवं रमणीय है, कामधेनुओं के समुदाय को चराते हुए देखा जाता है। कहीं गोलोक में विरजा के तट पर पारिजात वन में मधुर-मधुर वेणु बजाकर गोपांगनाओं को मोहित किया करता है। कहीं निरामय वैकुण्ठ में चतुर्भुज होकर विराजमान दिखायी देता है ॥२३-२५॥ कहीं लक्ष्मीकान्त बन कर चार भुजा वाले पार्षदों से सुसेवित होता रहता है। कहीं तीनों लोकों के पालन के लिए अपने अंश रूप से श्वेतद्वीप में विष्णुरूप धारण करके रहता है और कमला से सेवा कराता है। कहीं अपनी अंश-कला से किसी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मरूप से विराजमान रहता है। कहीं अपने ही अंश से शिवप्रद शिवस्वरूप में और कहीं अपनी सोलहवीं कला से सर्वाधार, परात्पर एवं महान्

---

१ क. ०द्बीजम० । २ क. ०लोद्देशे र० । ३ क. ०रं धामधे० ।

स्वयं महाविराड्रूपं विश्वौघो यस्य लोमसु । लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च ॥२९॥
नानावतारं बिभ्रन्तं बीजं तेषां सनातनम् । वसन्तं कुत्रचित्सन्तं योगिनां हृदये सताम् ॥३०॥
प्राणरूपं प्राणिनां च परमात्मानमीश्वरम् । तं च स्तोतुमशक्ताऽहमबला निर्गुणं विभुम् ॥३१॥
निर्लक्ष्यं च निरीहं च सारं वाङ्मनसोः परम् । यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥३२॥
पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रः षडाननः । यं स्तोतुं न क्षमा माया मोहिता यस्य मायया ॥३३॥
यं स्तोतुं न क्षमा श्रीश्च जडीभूता सरस्वती । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं को वा विद्वांश्च वेदवित् ॥३४॥
किं स्तौमि तमनीहं च शोकार्ता स्त्री परात्परम् । इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वी विरराम रुरोद च ॥३५॥
कृपानिधिं प्रणनाम भयार्ता च पुनः पुनः । कृष्णश्च शक्तिभिः सार्धमधिष्ठानं चकार ह ॥३६॥
भर्तुरभ्यन्तरे तस्याः परमात्मा निराकृतिः । उत्थाय शीघ्रं वीणां च धृत्वा च वाससी पुनः ॥३७॥
प्रणनाम देवसंघं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम् । नेदुर्दुन्दुभयो देवाः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥३८॥
दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिषम् । गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त च जगौ क्षणम् ॥३९॥
जीवितं पुरतः प्राप देवानां च वरेण च । जगाम पत्न्या सार्धं च पित्रा मात्रा च हर्षितः ॥४०॥

विराट् रूप धारण करता रहता है, जिसके रोम-रोम में विश्वसमूह स्थित रहता है। कहीं वह जगत् की रक्षा करने के लिए अपनी अंश-कला से लीला द्वारा अनेक अवतार धारण करता है, जिनका वह स्वयं सनातन बीज है। कहीं वह सद्गुणी योगियों के हृदय में निवास करता है॥२९-३०॥ वही प्राणियों का प्राण और परमात्मा ईश्वर है। उस निर्गुण व्यापक की स्तुति हम शक्तिहीन अबला कैसे कर सकती हैं? अनन्त (शेषनाग) अपने सहस्र मुखों द्वारा निर्लक्ष्य, निरीह, सारभूत एवं मन-वाणी से परे रहने वाले उस ब्रह्म की स्तुति करने में सदैव अपने को असमर्थ पाते हैं॥३१-३२॥ उसकी माया से मोहित होकर पञ्चमुख (शिव), चतुर्मुख (ब्रह्मा), गज-मुख (गणेश), और षडानन (कार्तिकेय) उसकी स्तुति करने में असमर्थ हैं॥३३॥ उसकी स्तुति करने में लक्ष्मी असमर्थ हैं। सरस्वती जड़ की भाँति मूक रह जाती हैं। वेद भी स्तुति करने में अक्षम हैं। तब भला उस परमात्मा की स्तुति कौन विद्वान् कर सकता है? (अर्थात् कोई नहीं)। मैं शोकातुर अबला उस अनीह एवं परात्पर की स्तुति क्या कर सकती हूँ? इतना कहकर वह गान्धर्वी चुप हो गई और फूट-फूट कर रोने लगी॥३४-३५॥ भयभीत होकर उसने कृपानिधान भगवान् को बार-बार प्रणाम किया। तब निराकार परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके पति के भीतर (हृदय-कमल में) शक्तिसमेत अधिष्ठान किया। अनन्तर उस (शव) गन्धर्व ने उठ कर शीघ्र वीणा सम्भाला और स्नान करके युगल वस्त्र धारण किया॥३६-३७॥ तदनन्तर उस देवसमूह तथा सामने स्थित उस ब्राह्मण को प्रणाम किया। फिर तो देवता दुन्दुभि बजाने और पुष्पों की वर्षा करने लगे॥३८॥ उस गन्धर्व-दम्पति पर दृष्टिपात करके उन्होंने उत्तम आशीर्वाद दिये। गन्धर्व ने देवों के सामने क्षणमात्र नाच और गान किया। देवों के सामने उनके वरदान द्वारा उसने जीवन प्राप्त किया। उसके पश्चात् हर्षित होकर अपने पिता माता और पत्नी के साथ वह गन्धर्व-नगर में चला गया॥३९-४०॥ उसकी पत्नी सती मालावती ने करोड़ों रत्न तथा

उपबर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालावती रत्नकोटिं धनानि विविधानि च ॥४१॥
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान्सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम् ॥४२॥
महोत्सवं च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जग्मुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिः स्वयम् ॥४३॥
एतत्ते कथितं सर्वं स्तवराजं च शौनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत् ॥४४॥
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभते वैष्णवो जनः । वरार्थी यः पठेद्भक्त्या चाऽऽस्तिकः परमास्थया ॥४५॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते फलम् । विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥४६॥
भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतम् । धर्मार्थी लभते धर्मं यशोऽर्थी लभते यशः ॥४७॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत् । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥४८॥
भयान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत् । दस्युग्रस्तो महारण्ये हिंस्रजन्तुसमन्वितः ॥४९॥
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे ॥५०॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गन्धर्वजीवदाने महापुरुषस्तोत्रप्रणयनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

विविध प्रकार का धन ब्राह्मणों को अर्पित कर उन्हें भोजन कराया। उनसे वेदपाठ और अन्य मंगल कृत्य करवाये। ॥४१-४२॥ भाँति-भाँति के महोत्सव रचाये। उन सबमें एकमात्र हरिनाम कीर्तन रूप मंगल कृत्य की प्रधानता रही। अनन्तर देवगण और विप्ररूपी स्वयं भगवान् अपने-अपने स्थान को चले गये॥४३॥ शौनक! स्तवराज के साथ यह सब प्रसंग मैंने तुम्हें बता दिया। पूजा के समय जो इस पवित्र स्तोत्र का पाठ करेगा, उस वैष्णव जन को हरि का दास्यभाव और हरि-भक्ति प्राप्त होगी। जो आस्तिक व्यक्ति वरदान की इच्छा से भक्ति समेत परम-आस्था से इस स्तोत्र को पढ़ेगा, उसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का फल निश्चित रूप से प्राप्त होगा। उसी प्रकार विद्यार्थी को विद्या, धनार्थी को धन, भार्यार्थी को स्त्री, पुत्रार्थी को पुत्र, धर्मार्थी को धर्म तथा यश के इच्छुक को यश प्राप्त होगा॥४४-४७॥ राज्यच्युत राजा को राज्य एवं प्रजाहीन को प्रजा प्राप्त होगी। रोगी को रोग से और बन्धन में बंधे हुए को बन्धन से मुक्ति मिलेगी॥४८॥ भयभीत प्राणी भय से मुक्त होगा। नष्ट धन वाले को धन प्राप्त होगा। महान् जंगल में हिंसक जन्तुओं और लुटेरों से घिर जाने पर छुटकारा मिल जायगा। दावाग्नि से जलता हुआ और समुद्र में डूबता हुआ प्राणी भी इसके प्रभाव से बच जाएगा॥४९-५०॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में महापुरुष-स्तोत्रप्रणयन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

मालावती धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रहर्षिता । चकार विविधं वेशं स्वात्मनः स्वामिनः कृते ॥१॥
भर्तुश्चकार शुश्रूषां पूजां च समयोचिताम् । तेन सार्धं सुरसिका रेमे सा सुचिरं मुदा ॥२॥
महापुरुषस्तोत्रं च पूजां च कवचं मनुम् । विस्मृतं बोधयामास स्वयं रहसि सुव्रता ॥३॥
पुरा दत्तं वसिष्ठेन स्तोत्रपूजादिकं हरेः । गन्धर्वाय च मालत्यै मन्त्रमेकं च पुष्करे ॥४॥
विस्मृतं स्तोत्रकवचं वसिष्ठश्च कृपानिधिः । गन्धर्वराजं रहसि बोधयामास शूलिनः ॥५॥
एवं चकार राज्यं च कुबेरभवनोपमे । आश्रमे परमानन्दो गन्धर्वो बान्धवैः सह ॥६॥
यथातथागताभिश्च स्त्रीभिरन्याभिरेव च । आगत्य ताभिः स्वस्वामी संप्राप्तः परया मुदा ॥७॥

शौनक उवाच

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा । दत्तो विशिष्टस्ताभ्यां च तं भवान्वक्तुमर्हति ॥८॥
द्वादशाक्षरमन्त्रं च शूलिनः कवचादिकम् । दत्तं गन्धर्वराजाय वसिष्ठेन च किं पुरा ॥९॥
तदपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम । शंकरस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम् ॥१०॥

अध्याय १९

कृष्णकवच, शिवकवच तथा शिवस्तवराज का वर्णन

सौति बोले—मालावती ने अत्यन्त हर्षित होकर ब्राह्मणों को धनदान करने के उपरान्त अपने स्वामी की सेवा के लिए नाना प्रकार से अपना श्रृंगार किया ॥१॥ पति की शुश्रूषा तथा समयोचित पूजा करके उस रसवन्ती ने अत्यन्त हर्ष से पति के साथ चिरकाल तक रमण किया ॥२॥ फिर उस सुव्रता ने एकान्त में पति को विस्मृत हुए महापुरुष-स्तोत्र, पूजा, कवच, और मन्त्र का बोध कराया ॥३॥ पूर्वकाल में वशिष्ठ ने पुष्कर क्षेत्र में गन्धर्व तथा मालावती को भगवान् के स्तोत्र, पूजन आदि का तथा एक मंत्र का उपदेश प्रदान किया था ॥४॥ पुनः कृपानिधान वशिष्ठ ने एकान्त स्थान में गन्धर्वराज को भगवान् शंकर का विस्मृत स्तोत्र और कवच का भी बोध कराया था ॥५॥ इस प्रकार उस गन्धर्व ने कुबेर-भवन के समान अपने महल में परमहर्षित होकर बान्धवों समेत राज्यसुख का अनुभव किया ॥६॥ उपबर्हण की अन्य स्त्रियाँ भी जैसे-तैसे वहाँ आकर परम प्रसन्नता के साथ अपने पति से मिलीं ॥७॥

शौनक बोले—पूर्वकाल में वशिष्ठ ने उन दोनों को भगवान् विष्णु के किस पूजन-विधि का उपदेश किया था, वह हमें बताने की कृपा करें ॥८॥ पूर्व समय में वशिष्ठ ने शंकर के जो द्वादशाक्षर मन्त्र और कवच आदि गन्धर्वराज को प्रदान किये थे, वह भी बताइए। उसे सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। शंकर का कवच, स्तोत्र, एवं मन्त्र दुर्गति का नाश करता है ॥९-१०॥

सौतिरुवाच

तुष्टाव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम् । तदेव स्तोत्रं दत्तं च मन्त्रं च कवचं शृणु ॥११॥
ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोडशाक्षरम् ॥१२॥
पुरा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरेः । पुरा दत्तं च कृष्णेन गोलोके शंकराय च ॥१३॥
ध्यानं च विष्णोर्वेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम् । मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम् ॥१४॥
अतीव गुप्तकवचं पितुर्वक्त्रान्मया श्रुतम् । पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना ध्रुवम् ॥१५॥
शूलिने ब्रह्मणा दत्तं गोलोके रासमण्डले । धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

राधाकान्त महाभाग कवचं यत्प्रकाशितम् । ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥१७॥
मां महेशं च धर्मं च भक्तं च भक्तवत्सल । त्वत्प्रसादेन पुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः ॥१८॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम् । अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥१९॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि । यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च ॥२०॥

सौति बोले—जिस स्तोत्र के द्वारा मालती ने परमेश्वर श्रीकृष्ण को प्रसन्न किया था, वही स्तोत्र वसिष्ठ ने गन्धर्व-दम्पति को दिया था। उनके दिए हुए कवच और मंत्र को सुनो ॥११॥ 'ओं नमो भगवतेरासमण्डलेशाय स्वाहा' इसी षोडशाक्षर मन्त्र को, जो कल्पवृक्ष के समान है, उन्होंने प्रदान किया था ॥१२॥ यही मन्त्र पहले समय में पुष्कर क्षेत्र में ब्रह्मा ने कुमार को और गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने शंकर जी को प्रदान किया था ॥१३॥ यहाँ भगवान् विष्णु का ध्यान भी, जो वेदोक्त, शाश्वत और सबके लिए दुर्लभ है, बता रहा हूँ! पूर्वोक्त मूलमन्त्र से भगवान् विष्णु को नैवेद्य आदि सभी उत्तम पदार्थ अर्पित करना चाहिए ॥१४॥ विप्र। उनके अत्यन्त गुप्त कवच को मैंने पिता के मुख से सुना था, जिसे गंगा-तट पर शंकर जी ने मेरे पिता को प्रदान किया था और गोलोक के रासमंडल में गोपीकान्त श्रीकृष्ण ने कृपा करके शंकर, ब्रह्मा और धर्म को बताया था। उस परमाद्भुत (कवच) को कह रहा हूँ ॥१५-१६॥

ब्रह्मा बोले—हे राधाकान्त! हे महाभाग! हे प्रभो! आप ने जो ब्रह्माण्ड-पावन नामक कवच प्रकाशित किया है, उसे कृपया बतायें ॥१७॥ हे भक्तवत्सल! मैं, महेश तथा धर्म तीनों आपके भक्त हैं। आप की कृपा से हम इसे जानकर अपने पुत्रों को बतायेंगे ॥१८॥

श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मेश! हे धर्म! इस परमोत्तम, गोपनीय और अत्यन्त दुर्लभ कवच को मैं तुम्हें दे रहा हूँ। यह मेरे प्राणसमान है। अतः जिस-किसी को यह न दे देना। क्योंकि जो तेज मेरे शरीर में है वही तेज

कुरु सृष्टिमिमं धृत्वा धाता त्रिजगतां भव । संहर्ता भव हे शंभो मम तुल्यो भवे भव ॥२१॥
हे धर्म त्वमिदं धृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम् । तपसां फलदातारो यूयं भवत मद्वरात् ॥२२॥
ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्य हरिः स्वयम् । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं जगदीश्वरः ॥२३॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः । त्रिलक्षवारपठनात्सिद्धिदं कवचं विधे ॥२४॥
यो भवेत्सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेच्च सः । तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च ॥२५॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च । भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च ॥२६॥
कृष्णः पायाच्छोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च । जिह्विकां वह्निजाया तु कृष्णायेति च सर्वतः ॥२७॥
श्रीकृष्णाय स्वाहेति च कण्ठं पातु षडक्षरः । ह्रीं कृष्णाय नमो वक्त्रं क्लींपूर्वश्च भुजद्वयम् ॥२८॥
नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु । दन्तपङ्क्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च ॥२९॥
ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥३०॥
ऐं कृष्णाय स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु । ओं विष्णवे स्वाहेति च कपोलं सर्वतोऽवतु ॥३१॥
ओं हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु । ओं गोवर्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम् ॥३२॥
प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः । दक्षिणे पातु गोपीशो नैर्ऋत्यां नन्दनन्दनः ॥३३॥

इस कवच में भी है॥१९-२०॥ ब्रह्मन्! तुम इसे धारण करके सृष्टि करो और तीनों लोकों के विधाता के पद पर प्रतिष्ठित रहो। शंभो! तुम (इस कवच को ग्रहण करके त्रिलोकी का) संहर्त्ता बनकर इस संसार में मेरे समान (शक्तिशाली) हो जाओ॥२१॥ धर्म! इसी प्रकार तुम भी इसे धारण करके कर्मों के साक्षी बनो और मेरे वरदान द्वारा सभी को उनके तप का फल प्रदान करो॥२२॥ इस ब्रह्माण्ड पावन नामक कवच के स्वयं विष्णु ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और जगदीश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) देव हैं, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के लिए इसका विनियोग किया जाता है। विधे! तीन लक्ष बार पाठ करने से इस कवच की सिद्धि होती है॥२३-२४॥ जो इस कवच को सिद्ध कर लेता है, वह तेज, सिद्धियोग, ज्ञान और पराक्रम में मेरे समान हो जाता है॥२५॥ प्रणव (ओंकार) मेरे शिर की रक्षा करे, रासेश्वराय नमः—यह मंत्र मेरे ललाट की रक्षा करे। राधेश्वराय नमः—यह मंत्र मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करें। भगवान् श्रीकृष्ण दोनों (कानों) की रक्षा करें। 'हे हरे!' यह मेरी (नाक) की रक्षा करे। अग्नि की पत्नी (स्वाहा) जिह्वा की रक्षा करे और कृष्णाय स्वाहा—यह मंत्र चारों ओर से रक्षा करे। ॥२६-२७॥ 'श्रीकृष्णाय स्वाहा'—यह षडक्षर मंत्र मेरे कण्ठ की रक्षा करे। ह्रीं कृष्णाय नमः—यह मंत्र मुख की तथा क्लीं कृष्णाय नमः—यह मंत्र दोनों भुजाओं की रक्षा करे। गोपांगनेशाय नमः (गोपांगना के अधीश्वर को नमस्कार है) यह अष्टाक्षर मंत्र दोनों कंधों की रक्षा करे। गोपीश्वराय नमः —यह मंत्र दाँतों की पंक्तियों और दोनों ओठों की रक्षा करे॥२८-२९॥ 'ओं नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा' यह सोलह अक्षरों का मंत्र स्वयं वक्षःस्थल की रक्षा करे॥३०॥ 'ऐं कृष्णाय स्वाहा' यह दोनों कर्णों की रक्षा करे। 'ओं विष्णवे स्वाहा' यह चारों ओर से कपोल की रक्षा करे॥३१॥ 'ओं हरये नमः' यह पीठ और चरण की तथा 'गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा'—यह समस्त शरीर की रक्षा करे॥३२॥ पूर्वदिशा में श्रीकृष्ण, अग्निकोण में माधव, दक्षिण दिशा में गोपीश तथा नैर्ऋत्य में नन्दनन्दन रक्षा करें॥३३॥ पश्चिम दिशा में गोविन्द, वायव्यकोण में राधिकेश्वर, उत्तर में रासेश और ईशान

वारुण्यां पातु गोविन्दो वायव्यां राधिकेश्वरः । उत्तरे पातु रासेश ऐशान्यामच्युतः स्वयम् ॥३४॥
सततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम् । इति ते कथितं ब्रह्मन्कवचं परमाद्भुतम् ॥३५॥
मम जीवनतुल्यं च युष्मभ्यं दत्तमेव च । अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥
कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात् ॥३६॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः । स्नात्वा तं च नमस्कृत्य कवचं धारयेत्सुधीः ॥३७॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद्द्विज[1] ॥३८॥

सौतिरुवाच

शिवस्य कवचं स्तोत्रं श्रूयतामिति शौनक । वसिष्ठेन च यद्दत्तं गन्धर्वाय च यो मनुः ॥३९॥
ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः । दत्तो वसिष्ठेन पुरा पुष्करे कृपया विभो ॥४०॥
अयं मन्त्रो रावणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा । स्वयं शंभुश्च बाणाय तथा दुर्वाससे पुरा ॥४१॥
मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम् । ध्यायेन्नित्यादिकं[2] ध्यानं वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥४२॥
ओं नमो महादेवाय ।

बाणासुर उवाच

महेश्वर महाभाग कवचं यत्प्रकाशितम् । संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥४३॥

में स्वयं अच्युत रक्षा करें ॥३४॥ स्वयं नारायण सर्वदा सब ओर से रक्षा करें। हे ब्रह्मन्! यह जो परमाद्भुत कवच मैंने तुम्हें दिया है, यह मेरे जीवन के तुल्य है। इस कवच के धारण करने पर इसके (पुण्य के) एक अंश की भी समानता सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ नहीं कर सकते हैं ॥३५-३६॥ विद्वान् पुरुष स्नानोपरान्त अनेक भाँति के वस्त्र, अलंकार और चन्दन से गुरु की सविधि अर्चना और वंदना करके यह कवच धारण करे ॥३७॥ द्विज! इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और यदि यह कवच सिद्ध हो गया तो वह विष्णु के समान हो जाता है ॥३८॥

सौति बोले——शौनक! अब शिव का कवच और स्तोत्र सुनो, जिसे वसिष्ठजी ने गन्धर्व को दिया था। विभो! प्राचीन समय में पुष्करक्षेत्र में गुरु वशिष्ठ ने कृपा करके 'ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहा' यह मंत्र गन्धर्व को प्रदान किया था ॥३९-४०॥ यही मंत्र प्राचीन समय में ब्रह्मा ने रावण को और शम्भु ने बाणासुर एवं दुर्वासा को दिया था ॥४१॥ इस मूल मंत्र से उन्हें नैवेद्य आदि सभी उत्तम वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए। इस मंत्र का वेदोक्त ध्यान 'ध्यायेन्नित्यं महेशं' इत्यादि श्लोक के अनुसार है, जो सर्वसम्मत है ॥४२॥ ॐ नमो महादेवाय।

बाणासुर बोले——महेश्वर, महाभाग! प्रभो! आपने संसार-पावन नामक जो कवच प्रकाशित किया है, उसे कहने की कृपा करें ॥४३॥

---

१ क. ० ज । इति महापुरुषब्रह्माण्डकथनं नाम कवचं संपूर्णम् । शि० ।

२ क. ०त्यात्मकं ।

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं परमाद्भुतम् । अहं तुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥४४॥
पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च । ममैवेदं च कवचं भक्त्या यो धारयेत्सुधीः ॥४५॥
जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवन्नवलीलया । संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥४६॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं च महेश्वरः । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥४७॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत् । यो भवेत्सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेद्भुवि
तेजसा सिद्धियोगेन तपसा विक्रमेण च ॥४८॥
शंभुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः । दन्तपङ्क्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम् ॥४९॥
कण्ठं पातु चन्द्रचूडः स्कन्धौ वृषभवाहनः । वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः ॥५०॥
सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा । स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु संततम् ॥५१॥
इति ते कथितं बाण कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥५२॥
यत्फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः । तत्फलं लभते नूनं कवचस्यैव धारणात् ॥५३॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥५४॥

सौतिरुवाच

इदं च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रं च शृणु शौनक । मन्त्रराजः कल्पतरुर्वसिष्ठो दत्तवान्पुरा ॥५५॥

महेश्वर बोले—वत्स ! उस परम अद्भुत कवच का मैं वर्णन कर रहा हूँ। वह गोपनीय एवं अत्यन्त दुर्लभ है, फिर भी तुम्हें प्रदान करूँगा ॥४४॥ पूर्वकाल में मैंने त्रैलोक्य-विजय करने के लिए दुर्वासा को यह कवच प्रदान किया था। अतः जो विद्वान् इस मेरे कवच को भक्तिपूर्वक धारण करेगा, वह भगवान् की भाँति लीला-पूर्वक तीनों लोकों को जीतने में समर्थ होगा ॥४५-४६॥ संसार-पावन नामक इस कवच का प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द और मैं महेश्वर देवता हूँ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए इसका विनियोग है ॥४७॥ पाँच लाख बार पाठ करने से यह कवच सिद्ध हो जाता है और जो इस कवच को सिद्ध कर लेता है, वह इस भूतल पर तेज, सिद्धियोग, तप और विक्रम में मेरे तुल्य हो जाता है ॥४८॥

शम्भु मेरे मस्तक की और महेश्वर मुख की रक्षा करें। नीलकण्ठ दाँतों की पंक्तियों की और स्वयं हर अधरोष्ठ की रक्षा करें ॥४९॥ चन्द्रचूड कण्ठ की रक्षा करें। वृषभवाहन दोनों स्कन्धों की, नीलकण्ठ वक्षःस्थल की और दिगम्बर पीठ की रक्षा करें ॥५०॥ विश्वेश सदा सब दिशाओं में सर्वांग की रक्षा करें। सोते-जागते सब समय स्थाणु निरन्तर मेरी रक्षा करें ॥५१॥ बाण ! यह परम अद्भुत कवच मैंने तुम्हें बताया है यह जिस किसी को न देना। यह अत्यन्त गोपनीय है ॥५२॥ समस्त तीर्थों में स्नान करने से जो फल मनुष्य को प्राप्त होता है, वह इस कवच के धारण करने से निश्चय ही प्राप्त होता है ॥५३॥ जो मूढ़मति प्राणी इस कवच को जाने बिना मेरी उपासना करता है, उसका मन्त्र सौ लाख बार जपने पर भी सिद्धिदायक नहीं होता है ॥५४॥

सौति बोले—शौनक ! यह कवच तो मैंने बता दिया, अब स्तोत्र और उस कल्पवृक्ष स्वरूप मन्त्रराज को भी सुनो, जिसे गुरु वसिष्ठ ने पूर्वकाल में दिया था ॥५५॥ ओं नमः शिवाय।

---

१ क. ०क । इति ब्रह्मवैवर्ते शंकरकवचम् । सौ० ।

ओं नमः शिवाय। बाणासुर उवाच—

वन्दे सुराणां सारं च सुरेशं नीललोहितम्। योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च गुरोर्गुरुम्॥५६॥

ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम्। तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्॥५७॥

तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम्। वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः॥५८॥

कारणं भुक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम्। आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम्॥५९॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभम्। ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्॥६०॥

विषयाणां विभेदेन बिभ्रतं बहुरूपकम्। जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम्॥६१॥

वायुरूपं चन्द्ररूपं[1] सूर्यरूपं महत्प्रभुम्। आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया॥६२॥

भक्तजीवनमीशं च भक्तानुग्रहकारकम्[2]। वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम्॥६३॥

अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम्। व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्

त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम्॥६४॥

इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं बाणः सुसंयतः। प्राणमच्छंकरं भक्त्या दुर्वासाश्च मुनीश्वरः॥६५॥

इदं दत्तं वसिष्ठेन गन्धर्वाय पुरा मुने। कथितं च महास्तोत्रं शूलिनः परमाद्भुतम्॥६६॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं[3] पठेद्भक्त्या च यो नरः। स्नानस्य सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम्॥६७॥

बाणासुर बोले—देवश्रेष्ठ और देवाधीश्वर नीललोहित (शिव) की मैं वन्दना करता हूँ, जो योगीश्वर, योगियों के बीज (कारक) और योगियों के गुरु के गुरु हैं। वही ज्ञानानन्द, ज्ञानरूप, ज्ञान-बीज, सनातन, तप का फल और समस्त सम्पत्तियों के देने वाले हैं॥५६-५७॥ वे तपः स्वरूप, तपस्या के बीज, तपोधनों के उत्तम धन, वर, वरणीय, वरदाता और सिद्धगणों के द्वारा स्तुति करने योग्य, भुक्तिमुक्ति के कारण, नरक-सागर से तारने वाले, शीघ्र प्रसन्न होने वाले प्रसन्नमुख और करुणासागर हैं॥५८-५९॥ वे बर्फ, चन्दन, कुन्द-पुष्प, चन्द्रमा, कुमुद तथा कमल के समान शुभ्र हैं। वे ब्रह्मज्योतिःस्वरूप और भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाले हैं॥६०॥ वे विषयों के भेद से अनेक रूप धारण करते हैं। जल, अग्नि, आकाश, वायु, चन्द्र और सूर्य उनके रूप हैं। वे ईश्वर तथा महान् प्रभु हैं और लीलापूर्वक अपना पद प्रदान करने में समर्थ हैं॥६१-६२॥ वे भक्तों के जीवन, ईश तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर हो उठते हैं। इस प्रकार जिन प्रभु की स्तुति वेद नहीं कर सकते हैं, जो अपरिच्छिन्न (सीमारहित), ईशान तथा मनवाणी से परे हैं, उनकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ?॥६३॥ वे बाघम्बर धारण करने वाले, बैल पर चढ़ने वाले, दिगम्बर, त्रिशूल और पट्टिश धारण करने वाले, मन्द मुसकान करने वाले तथा मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले हैं (ऐसे शिव की मैं वंदना करता हूँ।)॥६४॥ इस प्रकार बाणासुर नित्य सुसंयत हो कर स्तवराज के द्वारा शंकर की स्तुति करके उन्हें प्रणाम करता था। और मुनीश्वर दुर्वासा भी भक्तिपूर्वक ऐसा ही करते थे॥६५॥ मुने! पहले समय में वसिष्ठ जी ने शिव जी का यह परमाद्भुत महास्तोत्र गन्धर्व को प्रदान किया था॥६६॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है, वह समस्त तीर्थों का स्नान फल निश्चित रूप से प्राप्त करता है॥६७॥ जो संयमपूर्वक

---

१ क. ०पं महर्षीणां म०। २ क. ०म्। देवा। ३ क. ० ण्यं प्रातरुत्थाय पठेत्। स्ना०।

अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः । संयतश्च हविष्याशी प्रणम्य शंकरं गुरुम् ॥६८॥
गलत्कुष्ठी महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः । अवश्यं मुच्यते रोगाद्व्यासवाक्यमिति श्रुतम् ॥६९॥
कारागारेऽपि बद्धो यो नैव प्राप्नोति निर्वृतिम् । स्तोत्रं श्रुत्वा मासमेकं मुच्यते बन्धनाद्ध्रुवम् ॥७०॥
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भक्त्या मासं शृणोति यः । मासं श्रुत्वा संयतश्च लभेद्भ्रष्टधनो धनम् ॥७१॥
यक्ष्मग्रस्तो वर्षमेकमास्तिको यः शृणोति चेत् । निश्चितं मुच्यते रोगाच्छंकरस्य प्रसादतः ॥७२॥
यः शृणोति सदा भक्त्या स्तवराजमिमं द्विज । तस्यासाध्यं त्रिभुवने नास्ति किंचिच्च शौनक ॥७३॥
कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य भारते । अचलं परमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥७४॥
सुसंयतोऽतिभक्त्या च मासमेकं शृणोति यः । अभार्यो लभते भार्यां सुविनीतां सतीं वराम् ॥७५॥
महामूर्खश्च दुर्मेधा मासमेकं शृणोति यः । बुद्धिं विद्यां च लभते गुरूपदेशमात्रतः ॥७६॥
कर्मदुःखी दरिद्रश्च मासं भक्त्या शृणोति यः । ध्रुवं वित्तं भवेत्तस्य शंकरस्य प्रसादतः ॥७७॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा कीर्तिं सुदुर्लभाम् । नानाप्रकारधर्मं च यात्यन्ते शंकरालयम् ॥७८॥
पार्षदप्रवरो भूत्वा सेवते तत्र शंकरम् । यः शृणोति त्रिसंध्यं च नित्यं स्तोत्रमनुत्तमम् ॥७९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे
विष्णुशंकरस्तोत्रकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

हविष्य भोजन करते हुए एक वर्ष तक शंकर गुरु को प्रणाम कर के इस स्तोत्र को सुनता है, वह पुत्रहीन हो तो अवश्य ही पुत्र प्राप्त कर लेता है। जिसको गलित कुष्ठ हो या उदर में बड़ा भारी शूल उठता हो, वह यदि एक वर्ष तक इस स्तोत्र को सुने तो अवश्य ही उस रोग से मुक्त हो जाता है। यह बात मैंने व्यासजी से सुनी है।।६८-६९।। जो बन्धनों में आबद्ध होकर जेल में पड़ जाता है और किसी भाँति वहाँ से छुटकारा नहीं पाता वह इस स्तोत्र को एक मास तक सुनने पर निश्चित ही बन्धन-मुक्त हो जाता है।।७०।। इसी प्रकार भक्तिपूर्वक एक मास तक श्रवण करने से राज्यच्युत को राज्य और नष्ट धन वाले को धन प्राप्त होता है।।७१।। जो आस्तिक यक्ष्मा का रोगी होने पर एक वर्ष तक इसका श्रवण करता है, वह शंकर जी के अनुग्रह से रोग-मुक्त हो जाता है।।७२।। द्विज शौनक ! जो भक्तिपूर्वक इस स्तवराज का श्रवण करता है, उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं है।।७३।। भारत में कभी भी उसे बन्धु-वियोग नहीं होता है और वह अचल महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है, इसमें संशय नहीं।।७४।। संयम और भक्तिपूर्वक एक मास तक इसके सुनने पर स्त्रीहीन को विनम्र एवं सती-साध्वी स्त्री प्राप्त होती है।।७५।। महामूर्ख तथा अत्यन्त खोटी बुद्धि का मनुष्य भी यदि एक मास तक इस स्तवराज का श्रवण करता है तो वह गुरु के उपदेश मात्र से बुद्धि और विद्या प्राप्त करता है।।७६।। कर्मवश दुःखी और दरिद्र मनुष्य भी भक्तिपूर्वक एक मास तक इसके श्रवण करने पर शंकर जी की कृपा से निःसंदेह धन को प्राप्त करता है।।७७।। जो प्रति दिन तीनों संध्याओं के समय इस उत्तम स्तोत्र को सुनता है, वह इस लोक में सुखानुभव और अत्यन्त दुर्लभ कीर्ति तथा अनेक प्रकार के धर्मों को सम्पन्न कर के अन्त में भगवान् शंकर के लोक को जाता है और वहाँ श्रेष्ठ पार्षद बन कर शंकर जी की सेवा करता है।।७८-७९।।

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में विष्णु-शंकर-स्तोत्र-कथन नामक
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।।१९।।

अथ विंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

मुदा मालावतीसार्धं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । रेमे कालावशेषं च ताभिश्च निर्जने वने ।।१।।
गन्धर्वराजो मुमुदे पुत्रदारादिभिः सह । नानाविधं क्रतुवरं महत्पुण्यं चकार ह ।।२।।
राजत्वं बुभुजे राजा कुबेरभवनोपमे । रेमे सुशीलया सार्धं स्थिरयौवनयुक्तया ।।३।।
गन्धर्वराजः काले च गङ्गातीरे मनोहरे । पत्न्या सार्धमसूंस्त्यक्त्वा वैकुण्ठं च ययौ मुदा ।।४।।
शैवः शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया । बभूव दासो वैकुण्ठे विष्णोः श्यामचतुर्भुजः ।।५।।
कृत्वा पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ विप्र धनानि विविधानि च ।।६।।
काले स्वयं ब्रह्मशापात्प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः । स जज्ञे वृषलीगर्भे ब्रह्मबीजेन शौनक ।।७।।
मालावती वह्निकुण्डे पुष्करे भारते भुवि । कृत्वा तु वाञ्छितं कामं प्राणांस्तत्याज सा सती ।।८।।
सृञ्जयस्य तु पत्न्यां च मनुवंशोद्भवस्य च । जज्ञे नृपस्य साध्वी सा पुण्या जातिस्मरा वरा ।।९।।
उपबर्हणगन्धर्वः पतिर्मे भवितेति च । इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीवरा ।।१०।।

अध्याय २०

गोपपत्नी कलावती से उपबर्हण का जन्म

सौति बोले—उपबर्हण नामक गन्धर्व ने निर्जन वन में बड़ी प्रसन्नतापूर्वक मालावती तथा अन्य पत्नियों के साथ अपनी आयु के शेष काल तक रमण किया ।।१।। (उनके पिता) गन्धर्वराज भी पुत्रों और स्त्रियों के साथ आनन्द से रहने लगे । उन्होंने बड़े-बड़े पुण्य कर्म तथा नाना प्रकार के श्रेष्ठ यज्ञ किए ।।२।। कुबेर-भवन के समान अपने महल में उन्होंने स्थिर यौवन वाली सुशीला पत्नी के साथ रमण करते हुए राजत्व का उपभोग किया ।।३।। अन्त में गंगा जी के मनोहर तट पर पत्नी के साथ प्राण परित्याग करके वे वैकुंठधाम को चले गए ।।४।। वे शैव थे, इसलिए उन पर शिवजी की कृपा हुई तथा उनके पुत्र ने विष्णु की सेवा की थी, इसलिए भगवान् विष्णु की भी उन पर कृपादृष्टि हुई। इससे वे वैकुंठ में विष्णु के श्याम-चतुर्भुजरूपधारी पार्षद हुए ।।५।। विप्र ! अनन्तर उपबर्हण गन्धर्व ने अपने पिता और माता का संस्कार सम्पन्न कर ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के धन अर्पित किए ।।६।। शौनक ! समय आने पर उस बुद्धिमान् गन्धर्व ने ब्रह्मा के शाप द्वारा स्वयं प्राण परित्याग कर ब्राह्मण के वीर्य और शूद्रा के गर्भ से जन्म धारण किया ।।७।। अनन्तर उस सती मालावती ने भारत के पुष्कर क्षेत्र में जाकर अग्नि-कुण्ड में अभीष्ट कर्मों को सम्पन्न कर के प्राणों का परित्याग कर दिया ।।८।। पश्चात् मनुवंश में उत्पन्न राजा संजय की पत्नी में उस पवित्र एवं श्रेष्ठ पतिव्रता ने पुनः जन्म ग्रहण किया । वहाँ उसे पूर्व जन्म का स्मरण भी बना रहा ।।९।। इसीलिए उस कामुकी एवं सुन्दरी की यही इच्छा रही कि—'उपबर्हण गन्धर्व ही मेरे पति हों।' ।।१०।।

शौनक उवाच

ब्रह्मवीर्याच्छूद्रपत्न्यां गन्धर्वश्चोपबर्हणः । जातः केन प्रकारेण तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥११॥

सौतिरुवाच

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो नाम राजकः । कलावती तस्य पत्नी वन्ध्या चापि पतिव्रता ॥१२॥
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च भर्तुराज्ञया । उपतस्थे वने घोरे[1] नारदं काश्यपं मुनिम् ॥१३॥
ध्यायमानं च श्रीकृष्णं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । तस्थौ सुवेशं कृत्वा सा ध्यानान्तं च मुनेः पुरः ॥१४॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभातुल्येन तेजसा । तपन्तं दूरतोऽप्येवं समीपं गन्तुमक्षमा ॥१५॥
ध्यानान्ते च मुनिश्रेष्ठः परं कृष्णपरायणः । ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्थिरयौवनाम् ॥१६॥
चारुचम्पकवर्णाभां शरत्पङ्कजलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१७॥
बृहन्नितम्बभारार्तां पीनश्रोणिपयोधराम् । शोभितां पीतवस्त्रेण सस्मितां रक्तलोचनाम् ॥१८॥
मोहितां मुनिरूपेण कामबाणप्रपीडिताम् । दर्शयन्तीं स्तनश्रोणिं मैथुनासक्तचेतसा ॥१९॥
सिन्दूरबिन्दुभूषाढ्यां सुचारुकज्जलोज्ज्वलाम्[2] । पादालक्तकशोभाढ्यां रूपेणैव यथोर्वशीम् ॥२०॥
मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने । कस्य पत्नी कथं वाऽत्र सत्यं ब्रूहि च पुंश्चलि ॥२१॥

शौनक बोले—उपबर्हण गन्धर्व ब्राह्मण-वीर्य से शूद्र की पत्नी में किस प्रकार उत्पन्न हुए, यह मुझे बताने की कृपा करें ॥११॥

सौति बोले—कान्यकुब्जप्रदेश में एक द्रुमिल नामक राजा था। उसकी पत्नी कलावती पतिव्रता एवं बन्ध्या थी ॥१२॥ स्वामी के दोष से बन्ध्या होने के कारण वह एक बार समय पर (ऋतुस्नानोपरान्त) पति की आज्ञा से कश्यप-पुत्र नारद मुनि के पास भयानक वन में उपस्थित हुई ॥१३॥ ब्रह्मतेज से देदीप्यमान वे मुनि भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। उन्हीं के सामने वह अपना सुन्दर वेष बना कर खड़ी हो गयी ॥१४॥ ग्रीष्मकाल के मध्याह्न-सूर्य की प्रभा के समान तेज से तपते हुए मुनि के समीप वह न जा सकी (दूर ही खड़ी रही) ॥१५॥ फिर ध्यान करने के उपरान्त कृष्णपरायण मुनि ने उस स्थिरयौवन वाली सुन्दरी को दूर ही से देखा। चम्पा के समान उसका सुन्दर वर्ण था। शरत्कालीन कमल के समान नेत्र थे। शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति मुख-मंडल एवं रत्न के आभूषणों से भूषित वह थी। विशाल नितम्बों के भार से वह पीड़ित हो रही थी। उसके जघन भाग तथा कुच मोटे-मोटे थे। उसकी आँखें लाल लाल थीं। वह पीतवस्त्र से शोभित हो मुसकरा रही थी। वह मुनि के रूप पर लट्टू तथा कामबाण से पीड़ित थी। अतएव मैथुन के प्रति आसक्त चित्त से वह अपने स्तनों एवं श्रोणीभाग को दिखा रही थी ॥१६-१९॥ सिन्दूर-बिन्दु, आभूषण तथा सुन्दर काजल से वह सुशोभित थी। उसका वर्ण उज्ज्वल था। उसके पैरों में आलता लगा हुआ था। वह सौन्दर्य में उर्वशी जैसी थी। निर्जन वन में उसे देख कर मुनि ने पूछा—'कामिनी! तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? यहाँ क्यों आयी हो? पुंश्चली! सत्य

---

१ क. ०रे वरदं कस्य ०। २ क. कञ्जलोचनाम्। पा०।

मुनेश्च वचनं श्रुत्वा कम्पिता च कलावती । उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि ॥२२॥

कलावत्युवाच

गोपिकाऽहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी । पुत्रार्थिनी चाऽऽगताऽहं त्वन्मूलं भर्तुराज्ञया ॥२३॥
वीर्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थिता । तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥२४॥
वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तमः । उवाच नित्यं सत्यं च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥२५॥

काश्यप उवाच

यः स्वलक्ष्मीं च भोगार्हां पराय दातुमिच्छति । तं सा त्यजति मूढं च वेदवाद इति ध्रुवम् ॥२६॥
न त्वं द्रुमिलभोगार्हा पुनरेव भविष्यसि । विरक्तेन स्वयं त्यक्ता न गृह्णाति च त्वां पुनः ॥२७॥
यः शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । स चाण्डालो भवेत्सत्यं न कर्मार्हो द्विजातिषु ॥२८॥
पितृश्राद्धे च यज्ञे च शिलास्पर्शे सुरार्चने । नाधिकारश्च तस्यैवमित्याह कमलोद्भवः ॥२९॥
कुम्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरुषान् । मातामहान्स्वात्मनश्च दश पूर्वान्दशापरान् ॥३०॥
तत्तर्पणं मूत्रमेव पिण्डः सद्यः पुरीषकम् । शालग्रामस्य तत्स्पर्शे चोपवासस्त्रिरात्रकम् ॥३१॥
तदिष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम् । संन्यासिनां ब्राह्मणानां तदन्नं च पुरीषवत् ॥३२॥

बताओ'। मुनि का वचन सुनकर कलावती काँप उठी। उसने हृदय में श्रीहरि का ध्यान करके विनयपूर्वक कहा ॥२०-२२॥

कलावती बोली—हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं जाति की गोपिका और राजा द्रुमिल की पत्नी हूँ। पति की आज्ञा से पुत्र के लिए आपके पास आयी हूँ ॥२३॥ इसलिए आप मुझमें वीर्याधान करें। पास आयी हुई स्त्री की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और सर्वभक्षी अग्नि की भाँति तेजस्वी पुरुष इसके लिए दोषभागी भी नहीं होते हैं ॥२४॥ उस शूद्रा की बातें सुन कर मुनिश्रेष्ठ अत्यन्त कुपित हो गए और कोप से उनका ओठ फड़कने लगा। फिर वे नित्य सत्य वचन कहने लगे ॥२५॥

काश्यप बोले—जो भोग के उपयुक्त अपनी (गृह) लक्ष्मी दूसरे को देना चाहता है, वह स्त्री उस मूढ़ का त्याग कर देती है, यह वेद का निश्चित कहना है ॥२६॥ इससे तू भी पुनः द्रुमिल के भोग-योग्य न रह जायगी। जब विरक्त होकर उसने स्वयं तुम्हें त्याग दिया है तो पुनः तुम्हें वह कैसे ग्रहण कर सकता है ॥२७॥ जो ज्ञान में दुर्बल ब्राह्मण शूद्र की पत्नी को ग्रहण करता है, वह चाण्डाल हो जाता है और द्विजातियों में किसी कर्म के योग्य नहीं रहता है, यह सत्य है ॥२८॥ पितरों के श्राद्ध, यज्ञ, शिलास्पर्श (शालग्राम-पूजन) और देव-पूजन में उसका अधिकार नहीं रह जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥२९॥ फिर (अन्त में) वह स्वयं तो कुम्भीपाक नामक नरक में जाता ही है, साथ ही मातामहपक्ष के पुरखों को और अपने कुल के दस पहले की और दस बाद की पीढ़ियों को भी (नरक में) गिरा देता है ॥३०॥ उसका किया हुआ तर्पण मूत्र के समान और पिण्डदान विष्ठा के समान होता है। शालग्राम का स्पर्श हो जाने पर उसे तीन रात्रि का उपवास करना चाहिए ॥३१॥ उसके इष्टदेव उसके नैवेद्य और जल का ग्रहण नहीं करते हैं। संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए उसका अन्न मल के समान

कुम्भीपाके पच्यते स शक्रान्तं यावदेव हि । एकविंशतिपुरुषैः सार्धं सत्यं च पुंश्चलि ॥३३॥
पत्रोच्छिष्टं च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाधमः । तत्तुल्योऽधरभोजी चैवेत्याङ्गिरसभाषितम् ॥३४॥
शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणीं ज्ञानदुर्बलः । स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३५॥
अष्टादशेन्द्रावच्छिन्नं कालं च कालसूत्रके । ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता क्रिमिभिर्ध्रुवम् ॥३६॥
ततश्चाण्डालयोनौ च लब्ध्वा जन्म च ब्राह्मणी । शूद्रश्च कुष्ठी भवति ज्ञातिभिः परिवर्जितः ॥३७॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विरराम च शौनक । वृषली तत्पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति च मेनका । तस्या ऊरुं स्तनं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्यं पपात ह ॥३९॥
ऋतुस्नाता च वृषली कृत्वा तद्भक्षणं मुदा । मुनिं प्रणम्य सा हृष्टा प्रययौ भर्तुरन्तिकम् ॥४०॥
गत्वा प्रणम्य द्रुमिलं कान्ता कान्तं मनोहरम् । सर्वं निवेदयामास वृत्तान्तं गर्भहेतुकम् ॥४१॥
कलावतीवचः श्रुत्वा प्रहृष्टवदनेक्षणः । उवाच कान्तां मधुरं परिणामसुखावहम् ॥४२॥

द्रुमिल उवाच

विप्रस्य वीर्यं त्वद्गर्भे वैष्णवस्य महात्मनः । वैष्णवो भविता बालस्त्वं च भाग्यवती सती ॥४३॥
यद्गर्भे वैष्णवो जातो यस्य वीर्येण वा सति । तयोर्याति च वैकुण्ठं पुरुषाणां शतं शतम् ॥४४॥
तौ च विष्णुविमानेन सद्रत्ननिर्मितेन च । यातौ वैकुण्ठनगरं जन्ममृत्युजराहरम् ॥४५॥

रहता है ॥३२॥ पुंश्चली ! वह अपने इक्कीस पीढ़ियों समेत कुम्भीपाक नरक में इन्द्र के समय तक पकता रहता है, यह सत्य है ॥३३॥ जो ब्राह्मणाधम शूद्र के पत्तल की जूठन खाता है, वह उसके समान नीचभोजी है, ऐसा आंगिरस ने कहा है ॥३४॥ यदि शूद्र भी अपने विचार की कमी के कारण किसी ब्राह्मणी को पत्नीरूप में अपना लेता है, तो वह चौदह इन्द्रों के समय तक कालसूत्र नामक नरक में पकाया जाता है ॥३५॥ और वह ब्राह्मणी अठारह इन्द्रों के समय तक उस कालसूत्र में पकती रहती है। उसे वहाँ कीड़े काट-काट कर खाते रहते हैं ॥३६॥ पश्चात् वह ब्राह्मणी चाण्डाल योनि में उत्पन्न होती है और वह शूद्र कुष्ठ रोग से पीड़ित हो कर बन्धुओं द्वारा त्याग दिया जाता है ॥३७॥ शौनक ! इतना कह कर मुनिश्रेष्ठ चुप हो गए और वह शूद्रा उनके सामने खड़ी रही, जिसके ओठ, कंठ और तालु सूख गए थे ॥३८॥ इस बीच उसी मार्ग से मेनका अप्सरा जा रही थी, जिसके ऊरु और स्तन देखकर उन मुनि का वीर्य पात हो गया किन्तु स्नाता शूद्रा ने प्रसन्नता में उस वीर्य को खा लिया फिर मुनि को प्रणाम करके वह आनन्द के साथ अपने पति के पास चली गयी ॥३९-४०॥ वहाँ पहुँच कर उसने अपने मनोहर कान्त द्रुमिल को प्रणाम किया और अपने गर्भ धारण का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥४१॥ कलावती की बात सुन कर द्रुमिल के मुख और नेत्र प्रसन्नता से खिल उठे। तब उसने पत्नी से परिणाम में सुख देने वाला मधुर वचन कहा ॥४२॥

द्रुमिल बोले—तुम्हारे गर्भ में वैष्णव एवं महात्मा ब्राह्मण का वीर्य निहित है, इसलिए वैष्णव बालक उत्पन्न होगा। तुम भाग्यवती पतिव्रता भी हो ॥४३॥ जिसके वीर्य से जिसके गर्भ में वैष्णव बालक उत्पन्न होता है, उन दोनों के सौ-सौ पीढ़ियाँ वैकुण्ठ को चली जाती हैं ॥४४॥ और वे दोनों उत्तम रत्नों से निर्मित विमान पर बैठ कर उस वैकुण्ठ धाम में पहुँचते हैं, जहाँ जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था का हरण हो जाता है ॥४५॥ सुन्दरी ! अब तुम किसी

कस्यचिद्ब्राह्मणस्यैव गेहं गच्छ शुभानने । पश्चान्ममान्तिकं भद्रे यास्यसीति हरेः[1] पुरम् ॥४६॥
इत्युक्त्वा गोपराजश्च स्नात्वा कृत्वा तु तर्पणम् । संपूज्याभीष्टदेवं च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥४७॥
अश्वानां च चतुर्लक्षं गजानां[2] लक्षमेव च । शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४८॥
उच्चैःश्रवःपञ्चलक्षं रथानां च सहस्रकम् । शकटानां त्रिलक्षं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४९॥
गवां द्वादशलक्षं च महिषाणां त्रिलक्षकम् । त्रिलक्षं राजहंसानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५०॥
पारावतानां लक्षं च शुकानां च शतं मुने । लक्षं च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५१॥
ग्रामाणां च सहस्रं च नगराणां शतं शतम् । धान्यतण्डुलशैलं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५२॥
शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानां च सहस्रकम् । मुद्राणां कोटिकलशं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५३॥
ददौ तैजसपात्राणां भूषणानामसंख्यकम् । तां स्त्रियं रत्नभूषाढ्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५४॥
राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्बाह्ये हरिं स्मरन् । जगाम बदरीं गोपो मनोगामी मुदाऽन्वितः ॥५५॥
तत्र मासं तपः कृत्वा गङ्गातीरे मनोहरे । प्राणांस्तत्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः ॥५६॥
स च विष्णुविमानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च । संयुक्तो विष्णुदूतैश्च वैकुण्ठं च जगाम ह ॥५७॥
तत्र प्राप्य हरेर्दास्यं हरिदासो बभूव सः । वृत्तान्तं च कलावत्याः श्रूयतामिति शौनक ॥५८॥
गते कलावती नाथे उच्चैश्च प्ररुरोद ह । वह्नौ प्राणांस्त्यक्तुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता ॥५९॥

ब्राह्मण के घर चली जाओ और पश्चात् भगवान् के लोक में मेरे पास चली आओगी ॥४६॥ इतना कह उस गोपराज ने स्नान, तर्पण और अभीष्ट देव का पूजन सुसम्पन्न कर ब्राह्मणों को धन अर्पित किया। चार लाख घोड़े, एक लाख हाथी और सौ मतवाले गजराज हर्ष से ब्राह्मणों को दिया। पाँच लाख उच्चैःश्रवा के वंश में उत्पन्न घोड़े, एकसहस्र रथ एवं तीन लाख बैलगाड़ियाँ प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों को समर्पित कीं ॥४७-४९॥ बारह लाख गौएँ, तीन लाख भैंसें एवं तीन लाख राजहंस प्रसन्नता से ब्राह्मणों को दिए ॥५०॥ मुने ! एक लाख कबूतर, सौ तोते और एक लाख दास-दासियाँ प्रसन्नता से ब्राह्मणों को प्रदान कीं ॥५१॥ एक सहस्र ग्राम, दो सौ नगर तथा चावल और अन्न का पर्वत हर्ष के साथ ब्राह्मणों को अर्पित किए ॥५२॥ सौ करोड़ सुवर्ण, एक सहस्र रत्न तथा मुद्राओं से भरे करोड़ों कलश आनन्दपूर्वक ब्राह्मणों को प्रदान किए ॥५३॥ असंख्य चमकीले पात्र तथा आभूषण और रत्नालंकारभूषित स्त्रियाँ भी हर्षपूर्वक ब्राह्मणों को दे दीं। अनन्तर राज्य भी दान करके हर्षित महाराज गोप बाहर-भीतर हरि का स्मरण करते हुए मन के समान गति से बदरिकाश्रम पहुँच गए ॥५४-५५॥ यहाँ गंगाजी के मनोहर तट पर एक मास तक तप कर के अन्त में योग द्वारा प्राण परित्याग किया, जिसे महर्षियों ने तत्काल देखा था ॥५६॥ उपरान्त वह उत्तम रत्नों के बने विष्णु-विमान द्वारा विष्णु-दूतों के साथ वैकुण्ठ में पहुँचा। वहाँ हरि का दास्यभाव प्राप्त करके भगवान् का दास हुआ। शौनक ! अब कलावती का वृत्तान्त सुनो। पति के चले जाने पर कलावती उच्चस्वर से रोती हुई अग्नि में प्राण देने को तत्पर हुई, किन्तु उस ब्राह्मण ने ही उसे बचा लिया ॥५७-५९॥ अनन्तर वह ब्राह्मण उसे माता

---

१ क. ०रेः पदम्। २ क. ०नां च त्रिलक्षकम्।

ब्राह्मणो मातरित्युक्त्वा तां गृहीत्वा मुदाऽन्वितः । जगाम रत्नपूर्णं च स्वगेहं च क्षणेन च ॥६०॥
सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६१॥
तत्रस्था योषितः सर्वा ददृशुर्बालकं शुभम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा ॥६२॥
कामदेवाधिकं रूपे चन्द्राधिकशुभाननम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥६३॥
हस्तपादादिललितं सुकपोलं मनोहरम् । पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं वाऽतुलमुज्ज्वलम् ॥६४॥
करयुग्मं वाऽतुलं च रुदन्तं च स्तनार्थिनम् । योषितो बालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा ॥६५॥
पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टश्च ननर्त ह । स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥६६॥
पुपोष ब्राह्मणस्तां च सपुत्रां च यथा सुताम् ॥६७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० ब्रह्म० सौ० उपबर्हणजन्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथैकविंशोऽध्यायः ।

सौतिरुवाच

बभूव काले बालश्च क्रमेण पञ्चहायनः । जातिस्मरो ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रस्मृतः सदा ॥१॥
गीयते सततं कृष्णयशोनामगुणादिकम् । क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२॥

कह कर अत्यन्त प्रसन्नता से अपने साथ ले गया। क्षण भर में ही वह रत्नों से भरे अपने घर में पहुँचा ॥६०॥ ब्राह्मण के घर में उस पतिव्रता ने एक पुत्र उत्पन्न किया, जो तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कान्ति और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त था ॥६१॥ वहाँ की रहने वाली समस्त स्त्रियों ने उस बालक को देखा, जो अपने ब्रह्मतेज से ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न-कालीन सूर्य को पराजित कर रहा था ॥६२॥ वह रूप में कामदेव से बढ़ा-चढ़ा था। उसका मुख चन्द्र से भी अधिक निर्मल था : शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमा की भाँति उसका मुख-मण्डल, शारदीय कमल के समान नेत्र, कर, चरण, कपोल आदि सुन्दर तथा वह स्वयं मनोहर था। उसका चरणारविन्द कमलचक्र से अंकित तथा अत्यन्त उज्ज्वल था ॥६३-६४॥ उसके दोनों हाथ भी अनुपम सुन्दर थे। वह दुग्धपान करने के लिए रोने लगा। स्त्रियाँ उस बालक को देख कर बहुत प्रसन्न हुईं तथा आनन्द से अपने-अपने घर गयीं ॥६५॥ पुत्र-स्त्री समेत वह ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न होकर नाचने लगा। वहाँ वह बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगा। और वह ब्राह्मण पुत्र समेत उस स्त्री को कन्या की भाँति पालन-पोषण करने लगा ॥६६-६७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में उपबर्हण-जन्म-कथननामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

शूद्रयोनि में उत्पन्न बालक नारद की जीवनचर्या

सौति बोले—समय पाकर वह बालक क्रमशः बढ़कर पांच वर्ष का हुआ, जिसे सदा पूर्व जन्म का स्मरण, ज्ञान और पूर्व मन्त्रों का स्मरण बना रहा ॥१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के यश, नाम और गुणों का गान निरन्तर करते

कृष्णसंबन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै । तत्संबन्धिपुराणं च तत्र तिष्ठति बालकः ॥३॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेद्यमीप्सितम् । धूलिषु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेद्धरिम् ॥४॥
पुत्रमाह्वयते माता प्रातराशाय चेन्मुने । हरिं संपूजयामीति मातरं संवदेत्पुनः॥५॥

शौनक उवाच

किन्नाम बालकस्यास्य जन्मन्यत्र बभूव ह । व्युत्पत्त्या संज्ञया वाऽपि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥६॥

सौतिरुवाच

अनावृष्ट्यवशेषे च काले बालो बभूव ह । नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ॥७॥
ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च बालकः । जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः ॥८॥
वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने । मुनीन्द्रस्य वरेणैव तेनायं नारदाभिधः ॥९॥

शौनक उवाच

शिशुनाम च विज्ञातं व्युत्पत्त्या च यथोचितम् । मुनीन्द्रस्य कथं नाम नारदश्चेति मङ्गलम् ॥१०॥

सौतिरुवाच

अपुत्रकाय विप्राय धर्मपुत्रो नरो मुनिः । ददौ पुत्रं कश्यपाय तेनायं नारदाभिधः ॥११॥

हुए बालक कभी रोदन करने लगता और कभी नृत्य करते हुए रोमांचित हो जाता था ॥२॥ वह कृष्ण सम्बन्धी गाथाओं और पुराणों को जहाँ सुनता वहीं ठहर जाता था ॥३॥ अपने शरीर के सभी अंगों को धूलि-धूसरित किये हुए वह धूलियों में भगवान् की प्रतिमा बनाकर धूलि का अभीष्ट नैवेद्य चढ़ाकर धूलि से हरि की पूजा करता था ॥४॥ मुने ! यदि माता सबेरे कलेवे के लिए उस बच्चे को बुलाती, तो वह अपनी माता से कह देता था कि 'मैं भगवान् का पूजन कर रहा हूँ ॥५॥

शौनक बोले—इस जन्म में उत्पन्न होने पर उस बालक का क्या नामकरण हुआ ? आप व्युत्पत्ति और संज्ञा समेत उसे बताने की कृपा करें ॥६॥

सौति बोले—अनावृष्टि का समय चल रहा था, उसके कुछ अवशेष रहने पर उस बालक का जन्म हुआ और उसके जन्म-समय वृष्टि हुई, इसलिए नार (जल) देने के कारण उसका नाम 'नारद' हुआ ॥७॥ जातिस्मर एवं महाज्ञानी वह बालक दूसरे बालकों को नार (ज्ञान) देता था, इससे भी उसका नाम 'नारद' हुआ ॥८॥ मुने ! मुनिश्रेष्ठ नारद महर्षि के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण भी उसका नाम 'नारद' हुआ ॥९॥

शोनक बोले—यथोचित व्युत्पत्ति समेत बच्चे का नाम तो मुझे मालूम हो गया, किन्तु मुनीन्द्र (बच्चे के पिता) का 'नारद' यह मंगल नाम कैसे पड़ा ? ॥१०॥

सौति बोले—धर्मपुत्र नर मुनि ने पुत्रहीन ब्राह्मण कश्यप को पुत्र प्रदान किया था। अतः नरप्रदत्त होने के कारण उसका नाम नारद हुआ ॥११॥

शौनक उवाच

अधुना नामव्युत्पत्तिः श्रुता सौते शिशोरपि । शूद्रयोनौ ब्रह्मपुत्रः कथं स नारदाभिधः ॥१२॥

सौतिरुवाच

कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठाद्बभूवुर्बहवो नराः । नरान्ददौ तत्कण्ठं च तेन तन्नरदं स्मृतम् ॥१३॥
ततो बभूव बालश्च नरदात्कण्ठदेशतः । अतो ब्रह्मा नाम चक्रे नारदश्चेति मङ्गलम् ॥१४॥
सांप्रतं शिशुवृत्तान्तं सावधानं निशामय । उपालम्भरहस्येन विशिष्टं किं प्रयोजनम् ॥१५॥
ववृधे गोपिकाबालो विप्रगेहे दिने दिने । सुपुत्रां पालितां चक्रे ब्राह्मणः स्वसुतां यथा ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा आययुर्विप्रमन्दिरम् । शिशवः पञ्चवर्षीया महातेजस्विनो यथा ॥१७॥
प्रच्छन्नं[1] कृतवन्तश्च ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम् । मधुपर्कादिकं दत्त्वा तान्ननाम गृही द्विज ॥१८॥
फलमूलादिकं काले चत्वारो मुनिपुंगवाः । विप्रदत्तं बुभुजिरे तच्छेषं बुभुजे शिशुः ॥१९॥
चतुर्थको मुनिस्तस्मै कृष्णमन्त्रं ददौ मुदा । तेषां दासः स बभूव द्विजस्य मातुराज्ञया ॥२०॥
एकदा शिशुमाता च गच्छन्ती निशि वर्त्मनि । ममार सर्पदष्टा च तत्क्षणं स्मरती हरिम् ॥२१॥

शौनक बोले—सूतपुत्र ! अब मैंने उस शिशु के नाम की व्युत्पत्ति भी सुन ली। अब यह बताइए कि शूद्र-योनि में तथा ब्रह्मपुत्र-अवस्था में वह 'नारद' नामधारी कैसे हुआ ? ॥१२॥

सौति बोले—कल्पान्तर में ब्रह्मा के कण्ठ से अनेक नरों की उत्पत्ति हुई थी। उनके कण्ठ ने नर का दान किया था, इसलिए वह नरद कहलाया ॥१३॥ उस नरद अर्थात् कण्ठ से उस बालक का जन्म हुआ था, अतः ब्रह्मा ने उसका 'नारद' यह मंगल नामकरण किया ॥१४॥ सम्प्रति मैं उस बालक का वृत्तान्त कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ? बालक के नारद की उपलब्धि का रहस्य जान लेने से कौन-सा विशिष्ट प्रयोजन सिद्ध होगा ? ॥१५॥

ब्राह्मण के घर में वह गोपिका-पुत्र दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा और वह ब्राह्मण भी अपनी कन्या की भाँति पुत्र समेत उस गोपी का पालन-पोषण करने लगा ॥१६॥ इसी बीच उस ब्राह्मण के घर कुछ महातेजस्वी ब्राह्मण आये जो देखने में पांच वर्षों के बालकों की भाँति जान पड़ते थे ॥१७॥ वे अपने तेज से ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकालिक सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत कर रहे थे। गृहस्थ ब्राह्मण ने मधुपर्क देकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८॥ अनन्तर भोजन के समय उन चारों मुनिपुंगवों ने ब्राह्मण के दिये हुए फल, मूल आदि का आहार ग्रहण किया और उनके बचे हुए फलादि को उस बालक ने खाया ॥१९॥ उनमें से चौथे महर्षि ने प्रसन्न होकर उस बालक को भगवान् कृष्ण का मन्त्र प्रदान किया और वह बालक भी ब्राह्मण तथा माता की आज्ञा से उन लोगों का दास बन गया ॥२०॥ एक बार आधी रात के समय उस बालक की माता कहीं जा रही थी। मार्ग में एक सर्प ने उसे काट लिया, जिससे भगवान् का स्मरण करती हुई वह उसी समय मृतक हो गयी ॥२१॥ वह सती गोपी उत्तम रत्नों के बने विष्णु के विमान

---

१ ख. ०न्नं हृत० ।

सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती । विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्रत्ननिर्मितेन च ।।२२।।
प्रातर्बालो द्विजैः सार्धं प्रययौ विप्रमन्दिरात् । तत्त्वज्ञानं ददुस्तस्मै ब्राह्मणाश्च कृपालवः ।।२३।।
ब्रह्मपुत्राः शिशुं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल । महाज्ञानी शिशुस्तस्थौ गङ्गातीरे मनोहरे ।।२४।।
तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जजाप सः । क्षुत्पिपासारोगशोकहरं[1] वेदेषु दुर्लभम् ।।२५।।
महारण्ये च घोरे च अश्वत्थमूलसंनिधौ । कृत्वा योगासनं तस्थौ सुचिरं तत्र बालकः ।।२६।।

शौनक उवाच

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान्वक्तुमर्हति ।।२७।।

सौतिरुवाच

कृष्णेन दत्तो गोलोकं कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ।।२८।।
तं च ब्रह्मा ददौ भक्त्या कुमाराय च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ।।२९।।
ओं श्री नमो भगवते रासमण्डलेश्वराय । श्रीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ।।३०।।
महापुरुषस्तोत्रं च पूर्वोक्तं कवचं च यत् । अस्यौपयौगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ।।३१।।
तेजोमण्डलरूपे च सूर्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्याने योगैः सिद्धगणैः सुरैः ।।३२।।

में बैठकर विष्णु पार्षदों के साथ उसी क्षण वैकुण्ठ पहुँच गयी ।।२२।। प्रातःकाल होने पर वह बालक ब्राह्मण के घर से निकल कर इन अतिथि ब्राह्मणों के साथ चल दिया। उन दयालु ब्राह्मणों ने उस बच्चे को तत्त्वज्ञान प्रदान किया ।।२३।। अनन्तर वे ब्रह्मपुत्र महर्षिगण उस बच्चे को छोड़कर अपने स्थान को चले गये और वह महाज्ञानी शिशु गंगाजी के मनोहर तट पर रहने लगा ।।२४।। वहाँ स्नान करके उसने ब्राह्मणप्रदत्त उस मन्त्र का जप किया जो क्षुधा, तृष्णा (प्यास), रोग एवं शोक का अपहरण करने वाला तथा वेदों में दुर्लभ बताया गया है ।।२५।। घोर महाजंगल में पीपल वृक्ष के नीचे योगासन लगाकर वह बालक सुचिर काल तक बैठा रहा ।।२६।।

शौनक बोले—विद्वान् सनत्कुमार द्वारा उस बालक को भगवान् विष्णु का कौन सा मन्त्र प्राप्त हुआ था, उसे आप बताने की कृपा करें ।।२७।।

सौति बोले—प्राचीन समय में भगवान् श्री कृष्ण ने गोलोक में ब्रह्मा को जो बाईस अक्षरवाला मन्त्र प्रदान किया और जो वेदों में अत्यन्त दुर्लभ है, वही मन्त्र ब्रह्मा ने बुद्धिमान् सनत्कुमार की भक्ति देखकर उन्हें प्रदान किया था। द्विज ! कुमार ने वही मन्त्र उस ब्राह्मण को प्रदान किया ।।२८-२९।। (वह मन्त्र इस प्रकार है—) ओं श्री नमोभगवते रासमण्डलेश्वराय श्रीकृष्णाय स्वाहा। यह मन्त्र कल्पवृक्ष है। इसके साथ ही महापुरुष का स्तोत्र पूर्वोक्त कवच तथा इसके उपयोगी सामवेदोक्त ध्यान भी बताया था ।।३०-३१।। करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण उस तेजोमण्डलरूप अनिर्वचनीय चिन्मय प्रकाश में ध्यान लगाकर योगी, सिद्धगण तथा देवता मनोवांछित रूप का साक्षात्कार करते हैं। उसी को वैष्णव लोग अपने अभ्यन्तर में लाकर सदैव ध्यान करते हैं, जो अत्यन्त

---

१ क. ०रं देवेषु ।

ध्यायन्ते वैष्णवा रूपं [1]तदभ्यन्तरसंनिधौ । अतीव कमनीयानिर्वचनीयं मनोहरम् ॥३३॥
नवीनजलदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं पक्वबिम्बाधिकाधरम् ॥३४॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् । सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तालम्बनमेव च ॥३५॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ॥३६॥
त्रिभङ्गभङ्गिकायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् ॥३७॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । मयूरपुच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम् ॥३८॥
शोभितं जानुपर्यन्तं मालतीवनमालया । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम् ॥३९॥
मणिना कौस्तुभेन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम्[2] । वीक्षितं गोपिकाभिश्च शश्वद्व्रीडितलोचनैः ॥४०॥
स्थिरयौवनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च संततम् । भूषणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥४१॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं वन्दितं स्तुतम् । किशोरं राधिकाकान्तं शान्तरूपं परात्परम् ॥४२॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ध्यायेत्सर्वेश्वरं तं च परमात्मानमीश्वरम् ॥४३॥
इदं ते कथितं ध्यानं स्तोत्रं च कवचं मुने । मन्त्रौपयौगिकं सत्यं मन्त्रश्च कल्पपादपः ॥४४॥
सांप्रतं बालकस्तस्थौ ध्यानस्थस्तत्र शौनक । दिव्यं वर्षसहस्रं च निराहारः कृशोदरः ॥४५॥

कमनीय (सुन्दर), अनिर्वचनीय (वाणी से परे) एवं मनोहर है। नूतन मेघ के समान उसकी श्यामलकान्ति है। उसके नेत्र शारदीय कमल के समान हैं। मुख शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान है। अधरोष्ठ पके हुए बिम्ब से अधिक अरुण है। मोतियों की पंक्तियों को विजित करने वाली मनोहर दांतों की पंक्तियाँ हैं। वह मन्द मुसकान से युक्त है। हाथ में मुरली लिए हुए है। करोड़ों काम से अधिक उसका लावण्य है। वह लीलाधाम, मनोहर, लाखों चन्द्रमा की प्रभा (कान्ति) से सेवित तथा श्रीसमेत पुष्ट शरीर धारण किये हुए है॥३२-३६॥ वह त्रिभंगी छवि से सुशोभित है। उसकी दो भुजाएँ हैं। रत्नों के केयूर (बाजूबंद), पीत वस्त्र, वलय (कंकण) एवं रत्न-नूपुरों से वह भूषित है। उसके गंडस्थल रत्नों के युगल कुण्डलों से सुशोभित हैं। मस्तक पर मोर पंख का मुकुट शोभा पाता है। रत्नों की मालाएँ कंठदेश को विभूषित करती हैं। मालती की वनमाला से घुटनों तक का भाग विभूषित है। उसका सर्वांग चन्दन से चर्चित है। वह भक्तों पर कृपा करने वाला है॥३७-३९॥ उत्तम कौस्तुभमणि की प्रभा से उसका वक्षःस्थल उद्भासित होता है। गोपिकाएँ अपने लजीले नेत्रों से निरन्तर उसे देखा करती हैं॥४०॥ स्थिर यौवन वाली गोपियाँ भूषणों से विभूषित होकर उन्हें निरन्तर घेरे रहती हैं। वह राधा के वक्षःस्थल में विराजमान है॥४१॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवता उसकी पूजा, वंदना एवं स्तुति किया करते हैं। उसकी अवस्था किशोर है। वह राधा का प्राणनाथ, शान्तस्वरूप एवं परात्पर है। वह निर्लिप्त एवं साक्षिरूप है। निर्गुण तथा प्रकृति से परे है। उसी परमात्मा सर्वेश्वर ईश्वर का ध्यान करना चाहिए॥४२-४३॥ मुने! इस प्रकार मैंने ध्यान, स्तोत्र, कवच और कल्पवृक्ष रूपी मन्त्र तुम्हें बता दिया है॥४४॥ शौनक! उस समय वह बालक एक सहस्र दिव्य वर्षों तक निराहार और कृशोदर होकर ध्यान में बैठा रहा। फिर भी उस सिद्ध मन्त्र

---

१ क. ०रमेव च। २ क. ०म्। वेष्टितं गो०।

शक्तिमान्परिपुष्टश्च सिद्धमन्त्रप्रभावतः । ददर्श बालको ध्याने दिव्यं लोकं च बालकम् ॥४६॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् । किशोरवयसं श्यामं गोपवेशं च सस्मितम्॥४७॥
गोपैर्गोपाङ्गनाभिश्च वेष्टितं पीतवाससम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं चन्दनेन विर्चाचतम् ॥४८॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तूयमानं परात्परम् । दृष्ट्वा च सुचिरं शान्तं शान्तश्च गोपिकासुतः ॥४९॥
विरराम च शोकार्तो यदा तद्द्रष्टुमक्षमः । रुरोदाश्वत्थमूले च न दृष्ट्वा बालकं शिशुः ॥५०॥
बभूवाऽऽकाशवाणीति रुदन्तं बालकं प्रति । सत्यं प्रबोधयुक्तं च हितमेव मिताक्षरम् ॥५१॥
सकृद्यद्दर्शितं रूपं तदेव नाधुना पुनः । अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शं च कुयोगिनाम् ॥५२॥
एतस्मिन्विग्रहेऽतीते संप्राप्ते दिव्यविग्रहे । पुनर्द्रक्ष्यसि गोविन्दं जन्ममृत्युहरं हरिम् ॥५३॥
इति श्रुत्वा बालकश्च विरराम मुदाऽन्वितः । काले तत्याज तीर्थे च तनुं कृष्णं हृदि स्मरन् ॥५४॥
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । बभूव शापमुक्तश्च नारदश्च महामुनिः॥५५॥
तनुं त्यक्त्वा स जीवश्च विलीनो ब्रह्मविग्रहे । बभूव प्राक्तनान्नित्यः कालभेदे तिरोहितः ॥५६॥
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छया नित्यदेहिनाम् । जन्ममृत्युजराव्याधिर्भक्तानां नास्ति शौनक ॥५७॥

इति श्री ब्र० महा० ब्र० सौ० नारदशापविमोचनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

के प्रभाव से वह शक्तिमान् और परिपुष्ट बना रहा। बालक ने अपने ध्यान में दिव्यलोक और एक बालक को देखा, जो रत्नसिंहासन पर विराजमान, रत्नों के भूषणों से भूषित तथा किशोर वय, श्यामलवर्ण और गोप वेष धारण किए हुए मुस्कुरा रहा था। वह गोपों और गोपियों से घिरा हुआ, पीताम्बर, द्विभुज तथा मुरली हाथ में लिए हुए था। उसके श्रीअंग चन्दन-र्चाचत थे। उस परात्पर की ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवगण स्तुति कर रहे थे। ऐसे शान्तरूप को बहुत काल तक देखकर वह गोपिकासुत ध्यान से विरत हो गया। ध्यान टूटने पर जब फिर वह उसका दर्शन न कर सका तब शोक से पीड़ित हो गया। ध्यानगत बालक को पुनः न देखने पर वह बच्चा उस पीपल के मूल में रोने लगा ॥४५-५०॥ अनन्तर रोते हुए उस बालक को संबोधित करके आकाशवाणी हुई, जो सत्य, ज्ञानयुक्त, हितकर और परिमित अक्षरों में थी—'जिस रूप को तुमने अभी एक बार देखा है, वह पुनः इस समय नहीं दिखायी देगा। क्योंकि अपरिपक्व कषाय (मल)वाले कुयोगियों के लिए उसका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है ॥५१-५२॥ तुम इस शरीर को त्यागकर दिव्य शरीर धारण करने पर जन्म-मृत्युहारी भगवान् गोविन्द का (यह) रूप पुनः देखोगे' ॥५३॥ यह सुनकर उस बालक ने प्रसन्नता से देखने का प्रयत्न छोड़ दिया और समय पाकर तीर्थभूमि में, हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए अपने शरीर को त्याग दिया। उस समय स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे तथा पुष्पों की वर्षा होने लगी। इस प्रकार महामुनि नारद शापमुक्त हुए ॥५४-५५॥ शरीर त्यागकर वह जीव ब्रह्म-शरीर में विलीन हो गया। पहले की अपेक्षा वह नित्य हो गया और भिन्नकाल में तिरोहित भी हुआ। शौनक ! नित्यरूपधारी जो भक्त जन हैं, उनका अपनी इच्छा से आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है। वे जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से पीड़ित नहीं होते हैं ॥५६-५७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारद-शापमोचन
नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

कति कल्पान्तरेऽतीते स्रष्टुः सृष्टिविधौ पुनः। मरीचिमिश्रैर्मुनिभिः सार्धं कण्ठाद्बभूव सः ॥१॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशाद्बभूव सः। नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना ॥२॥
यः पुत्रश्चेतसो धातुर्बभूव मुनिपुंगवः। तेन प्रचेता इति च नाम चक्रे पितामहः ॥३॥
बभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः। सर्वकर्मणि दक्षश्च तेन दक्षः प्रकीर्तितः ॥४॥
वेदेषु कर्दमः शब्दश्छायायां वर्तते स्फुटः। बभूव कर्दमाद्बालः कर्दमस्तेन कीर्तितः ॥५॥
तेजोभेदे मरीचिश्च वेदेषु वर्तते स्फुटम्। जातः सद्योऽतितेजस्वी मरीचिस्तेन कीर्तितः ॥६॥
क्रतुसंघश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना। ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते ॥७॥
प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्च बालकः। इरस्तेजस्विवचनोऽप्यङ्गिरास्तेन कीर्तितः ॥८॥
अतितेजस्विनि भृगुर्वर्तते नाम्नि शौनक। जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्तितः ॥९॥
बालोऽप्यरुणवर्णश्च जातः सद्योऽतितेजसा। प्रज्वलन्नूर्ध्वतपसा चारुणिस्तेन कीर्तितः ॥१०॥
हंसा आत्मवशा यस्य योगेन योगिनो ध्रुवम्। बालः परमयोगीन्द्रस्तेन हंसी प्रकीर्तितः ॥११॥

अध्याय २२

ब्रह्मपुत्रों के नामों की व्युत्पत्ति

सौति बोले—अनेक कल्पों के व्यतीत हो जाने पर पुनः सृष्टि-कार्य में संलग्न ब्रह्मा के नरद नामक कण्ठ प्रदेश से मरीचि आदि मुनियों के साथ वे शापमुक्त मुनि प्रकट हुए ॥१॥ इसी कारण उस मुनिवर्य का 'नारद' नामकरण हुआ ॥२॥ ब्रह्मा के चित्त से जिस मुनिपुंगव का जन्म हुआ, पितामह ने उसका 'प्रचेता' नामकरण किया ॥३॥ जो ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व से सहसा उत्पन्न होकर और सभी कर्मों में दक्ष हुए, उनका नाम 'दक्ष' रखा गया ॥४॥ वेदों में कर्दम शब्द छाया अर्थ में स्पष्ट कहा गया है। अतः उनके कर्दम (छाया) से उत्पन्न होने वाले पुत्र का नाम 'कर्दम' रखा गया ॥५॥ मरीचि शब्द वेदों में तेजोविशेष के अर्थ में कहा गया है, अतः ब्रह्मा के तेज से उत्पन्न होने वाले पुत्र का नाम 'मरीचि' पड़ा ॥६॥ जिस बालक ने जन्मान्तर में अनेक यज्ञों को सुसम्पन्न किया था, वह ब्रह्मपुत्र होने पर 'क्रतु' नाम से ख्यात हुआ ॥७॥ ब्रह्मा के प्रधान अंग मुख से उत्पन्न हुआ पुत्र इर अर्थात् तेजस्वी था, इसलिए 'अंगिरा' नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८॥ शौनक! अतितेजस्वी अर्थ में भृगु शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः जो बालक अतितेजस्वी हुआ उसका नाम 'भृगु' रखा गया ॥९॥ जो बालक होने पर भी तत्काल अत्यन्त तेज के कारण अरुण वर्ण का हो गया और उच्च कोटि की तपस्या के कारण तेज से प्रज्वलित होने लगा, वह 'आरुणि' नाम से ख्यात हुआ ॥१०॥ जिस योगी के योग द्वारा हंसगण उसके अधीन हो गये थे, उस परमयोगीन्द्र बालक की 'हंसी' नाम से ख्याति हुई ॥११॥ जो बालक तत्काल प्रकट होकर ब्रह्मा का वशीभूत,

वशीभूतश्च शिष्यश्च जातः सद्यो हि बालकः। अतिप्रियश्च धातुश्च वशिष्ठस्तेन कीर्तितः ॥१२॥
संततं यस्य यत्नश्च तपःसु बालकस्य च। प्रकीर्तितो यतिस्तेन संयतः सर्वकर्मसु ॥१३॥
पुलस्तपःसु वेदेषु वर्तते हः स्फुटेऽपि च। [1]स्फुटस्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः ॥१४॥
पुलस्तपःसमूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम्। तपःसंघस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालकः ॥१५॥
त्रिगुणायां प्रकृत्यां त्रिर्विष्णावश्च प्रवर्तते। तयोर्भक्तिः समा यस्य तेन बालोऽत्रिरुच्यते ॥१६॥
जटावह्निशिखारूपाः पञ्च च सन्ति मस्तके। तपस्तेजोभवा यस्य स च पञ्चशिखः स्मृतः ॥१७॥
अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि। अपान्तरतमा नाम शिशुस्तेन प्रकीर्तितम् ॥१८॥
स्वयं तपः समाप्नोति वाहयेत्प्रापयेत्परान्। वोढुं समर्थस्तपसि वोढुस्तेन प्रकीर्तितः ॥१९॥
तपसस्तेजसा बालो दीप्तिमान्सततं मुने। तपःसु रोचते चित्तं रुचिस्तेन प्रकीर्तितः ॥२०॥
कोपकाले बभूवुर्ये स्रष्टुरेकादश स्मृताः। रोदनादेव रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना ॥२१॥

शौनक उवाच

रुद्रेष्वेकतमो[2] वाऽन्यो महेश इति मे भ्रमः। भवान्पुराणतत्त्वज्ञः संदेहं छेत्तुमर्हति ॥२२॥

शिष्य तथा अत्यन्त प्रीतिपात्र हुआ, उसका नाम वशिष्ठ, रखा गया ॥१२॥ उत्पन्न होने पर जिस बालक का सतत यत्न केवल तप के लिए होता था और जो सभी कर्मों में संयत था, वह इसी गुण के कारण 'यति' कहलाया। वेदों में 'पुल' शब्द तप के अर्थ में स्पष्ट कहा गया है और स्फुट अर्थ में 'ह' है। इसलिए जिस बालक में स्पष्ट रूप से तपःसमूह दिखाई पड़ा, उसका नाम पुलह पड़ा। 'पुल' तपः समूह का अर्थ है इसलिए जिसके पूर्वजन्मों का तपः समूह विद्यमान था, वह बालक पुलस्त्य कहलाया ॥१३-१५॥ त्रिगुणमयी प्रकृति के अर्थ में 'त्रि' शब्द और विष्णु के अर्थ में 'अ' शब्द प्रयुक्त हैं, इसीलिए उन दोनों में समान भक्ति रखने वाले बालक का नाम 'अत्रि' हुआ ॥१६॥ तपस्तेज के कारण अग्नि की शिखा के समान पाँच शिखाएँ जिसके मस्तक पर थीं, उसका नाम 'पंचशिख' हुआ ॥१७॥ जिसने अन्य जन्म में आंतरिक अंधकार से रहित प्रदेश में तप किया था; उसका नाम 'अपान्तरतमा' हुआ ॥१८॥ स्वयं तप करके अन्य प्राणियों को भी तपस्वी बनाने का प्रयत्न करने वाले तथा तपस्या का भार वहन करने वाले बालक को 'वोढु' नाम से पुकारा गया ॥१९॥ मुने! जो बालक तपस्या के तेज से दीप्तिमान् रहता था तथा तपस्या में ही जिसकी रुचि रहती थी, उसका नाम 'रुचि' पड़ा ॥२०॥ जो ब्रह्मा के कोप के समय ग्यारह की संख्या में प्रकट हुए और रोदन करने लगे, उनका नाम 'रुद्र' हुआ ॥२१॥

शौनक बोले—उन्हीं रुद्रों में से एक बालक का नाम 'महेश' है या अन्य किसी का नाम महेश है, ऐसा मुझे भ्रम है। आप पुराणों के तत्त्ववेत्ता हैं, अतः मेरे इस सन्देह को दूर करने की कृपा करें ॥२२॥

---

१. क. स्फुटं तपः स्वरूपं च। २. ख. ०मो बालो म०।

सौतिरुवाच

विष्णुः सत्त्वगुणः पाता ब्रह्मा स्रष्टा रजोगुणः। तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निवारा भयंकराः ॥२३॥
कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेष्वेकः शंकरांशकः। शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च शिवश्च शिवदः सताम् ॥२४॥
अन्ये कृष्णस्य च कलास्तावंशौ विष्णुशंकरौ। समौ सत्त्वस्वरूपौ द्वौ परिपूर्णतमस्य च ॥२५॥
उक्तं रुद्रोद्भवे काले कथं विस्मरसि द्विज। मायया मोहिताः सर्वे मुनीनां च मतिभ्रमः ॥२६॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२७॥
ब्रह्मा स्रष्टुं [1]पूर्वपुत्रानुवाच ते न सेहिरे। तेन प्रकोपितो धाता रुद्राः कोपोद्भवा मुने ॥२८॥
सनकश्च सनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ। आनन्दितौ च बालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौ सदा ॥२९॥
सनातनश्च श्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमः स्वयम्। तद्भक्तस्तत्समः सत्यं तेन बालः सनातनः ॥३०॥
सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः। सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥३१॥
ब्रह्मणो बालकानां च व्युत्पत्तिः कथिता मुने। सांप्रतं नारदाख्यानं श्रूयतां च यथाक्रमम् ॥३२॥

इति श्रीब्र० महा० ब्र० सौ० ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

सौति बोले—सत्त्वगुण सम्पन्न होने के नाते विष्णु (जगत् के) रक्षक, रजोगुण सम्पन्न ब्रह्मा स्रष्टा और तमोगुण सम्पन्न होने के कारण वे रुद्र दुर्निवार और भयंकर हैं ॥२३॥ उनमें से एक का नाम 'कालाग्निरुद्र' है, जो संहर्त्ता हैं तथा शंकर के अंश हैं। शुद्ध सत्त्वरूप जो शिव हैं, वे सत्पुरुषों का कल्याण करने वाले हैं ॥२४॥ अन्य रुद्र भगवान् श्रीकृष्ण की कला मात्र हैं। केवल विष्णु एवं शंकर उन परिपूर्णतम श्रीकृष्ण के अंश हैं और वे दोनों समान सत्त्वस्वरूप हैं ॥२५॥ द्विज ! रुद्र की उत्पत्ति के प्रसंग में मैंने यह बात तुम्हें बता दी थी। उसे क्यों भूल रहे हो। सभी भगवान् की माया से मोहित हैं। इसलिए मुनियों को भी भ्रम हो जाता है ॥२६॥ ब्रह्मा के पुत्र प्रथम सनक, द्वितीय सनन्द, तृतीय सनातन और चौथे भगवान् सनत्कुमार हैं। मुने ! ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इन्हें उत्पन्न करके सृष्टि करने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसलिए ब्रह्मा अत्यन्त कुपित हो गये। उसी कोप से रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥२७-२८॥ सनक और सनन्द दोनों शब्द आनन्दवाचक हैं। वे दोनों बालक सदैव आनन्द एवं अत्यन्त भक्ति से पूर्ण रहते हैं। इसलिये सनक और सनन्द नाम से ख्यात हुए ॥२९॥ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सनातन, नित्य और पूर्णतम हैं। उनका भक्त भी उन्हीं के समान है, अतः वह तीसरा बालक 'सनातन' नाम से विख्यात हुआ ॥३०॥ सनत् शब्द नित्यवाचक है और कुमार शब्द शिशुवाचक, अतः ब्रह्मा ने उस बालक का नाम सनत्कुमार रखा ॥३१॥ मुने ! इस प्रकार मैंने ब्रह्मा के पुत्रों के नामों की व्युत्पत्ति बतायी। अब क्रमशः नारद का आख्यान सुनो ॥३२॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्मपुत्र-व्युत्पत्ति-कथन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

---

१. ०र्वंभूतानु०।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

स्रष्टा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वबालकान्। नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्तुं च शौनक॥१॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखावहम्। उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारगम्॥२॥

ब्रह्मोवाच

एहि वत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणवल्लभ। ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारक॥३॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां जनकः परमो गुरुः। विद्यादाता मन्त्रदाता द्वौ समौ च पितुः परौ॥४॥
तवाहं जनकः पुत्र विद्यादाता च पालकः। ममाऽऽज्ञया च मत्प्रीत्या कुरु दारपरिग्रहम्॥५॥
स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाऽऽज्ञां पालयेद्गुरोः। न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः॥६॥
स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान्। गुरोर्वचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे॥७॥
सर्वेषामाश्रमाणां च प्रधानः पुण्यवान्गृही। स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तं च मन्दिरं तपसः फलम्॥८॥
[1]पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः। सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः॥९॥

अध्याय २३

नारद द्वारा ब्रह्मा से तप के लिए आज्ञा माँगना

सौति बोले—शौनक! ब्रह्मा ने सृष्टि कार्य में सभी पुत्रों को लगाकर नारद को भी सृष्टि करने के लिए प्रेरित किया॥१॥ ब्रह्मा ने वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान् नारद से यह हितकर, सत्य, वेदों का सार, और परिणाम में सुख देने वाली बात कही॥२॥

ब्रह्मा बोले—वत्स! यहाँ आओ। तुम मेरे कुल में श्रेष्ठ और प्राणों से भी प्रिय हो। तुम ज्ञानदीप की शिखा से अज्ञान-तिमिर के नाशक हो॥३॥ पिता परम गुरु होता है। वह वन्दनीय पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ है। विद्यादाता और मन्त्रदाता दोनों समान हैं तथा पिता से भी बढ़कर हैं। पुत्र! मैं तुम्हारा पिता, विद्यादाता और पालनकर्त्ता हूँ। अतः मेरी आज्ञा से मेरे प्रसन्नार्थ तुम विवाह अवश्य करो॥४-५॥ पुत्र और शिष्य वही है, जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है। जो गुरु की अवहेलना करता है उस मूढ़ का कल्याण नहीं होता है। वही पण्डित, ज्ञानी, कल्याणभाजन और पुण्यवान् है, जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है। पग-पग पर उसका कल्याण होता है॥६-७॥ सभी आश्रमों में पुण्यवान् गृही श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि उसके तप के फलस्वरूप उसका गृह स्त्री, पुत्र और पौत्रों से सुसम्पन्न रहता है॥८॥ जैसे हौज में पानी पीने के लिए गायें आती हैं उसी तरह पूर्वाह्ण में देवता और अपराह्ण में पितर गृहस्थ के यहाँ आते हैं॥९॥ गृही सदा नित्य, नैमित्तिक और काम्य अनुष्ठानों को

१क. ०रः सर्वंका०।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा। इह एतत्सुखं पुण्यं स्वर्गभोगः परत्र च॥१०॥
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः। यशस्वी पुण्यवांश्चैव कीर्तिमान्धनवान्सुखी॥११॥
यशस्वी कीर्तिमान्यो हि मृतो जीवति संततम्। यशःकीर्तिविहीनो हि जीवन्नपि मृतो हि सः॥१२॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः। उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः॥१३॥

नारद उवाच

एकदा वाग्विरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः। हानिर्बभूव दैवेन महती वाऽयशस्करी॥१४॥
मया प्राप्तं च त्वच्छापाद्गान्धर्वं शौद्रमेव च। जन्म कर्म च मच्छापात्त्वमपूज्यो भवे भव॥१५॥
बभूव शापो मुक्तो मे काले ते भविता विधे। दोषाय कल्पते शश्वद्विरोधो न गुणाय च॥१६॥
स पिता स गुरुर्बन्धुः स पुत्रः स अधीश्वरः। यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्तिं च कारयेत्॥१७॥
असद्वर्त्मनि चाज्ञानाद्गच्छन्ति यदि बालकाः। निवर्तयति तानेव स पिता करुणानिधिः॥१८॥
कारयित्वा कृष्णपादे भक्तित्यागं च यः पिता। अन्यस्मिन्विषये पुत्रं स किं हन्त प्रवर्तयेत्॥१९॥
दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च। तपःस्वर्गभक्तिमुक्तिकर्मणां व्यवधायकः॥२०॥
योषितस्त्रिविधा ब्रह्मन्गृहिणां मूढचेतसाम्। साध्वी भोग्या च कुलटास्ताः सर्वाःस्वार्थतत्पराः॥२१॥
परलोकभिया साध्वी तथेह यशसाऽऽत्मनः। कामस्नेहाच्च कुरुते भर्तुः सेवां च संततम्॥२२॥

करता रहता है। जिससे वह इस लोक में पवित्र सुख और परलोक में स्वर्ग-भोग प्राप्त करता है॥१०॥ स्वधर्म का तत्परता से पालन करने वाला गृहस्थ जीवन्मुक्त होता है। वह यशस्वी, पुण्यवान्, कीर्तिमान्, धनवान् और सुखी भी होता है॥११॥ जो यशस्वी और कीर्तिमान् है वह मर जाने पर भी निरन्तर जीवित रहता है और यश एवं कीर्ति से हीन प्राणी जीवित रहने पर भी मृतक के समान है॥१२॥ ब्रह्मा की बात सुनकर मुनिवर नारद के कंठ, ओठ और तालू सूख गये। वे भयभीत होकर विनयपूर्वक बोले—॥१३॥

नारद ने कहा—एक बार वाग्विरोध के फलस्वरूप ही पुत्र-पिता दोनों की बहुत बड़ी और निन्दनीय हानि हुई है॥१४॥ आपके शाप के कारण गन्धर्व-कुल और शूद्र-कुल में मेरा जन्म-कर्म हुआ तथा मेरे शाप से आप संसार में अपूज्य हो गये। विधे! बहुत काल के उपरान्त मुझे आपके शाप से मुक्ति मिली है इसीलिए कहा जाता है कि—(आपस का) विरोध निरन्तर दोष ही उत्पन्न करता है न कि गुण॥१५-१६॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल में दृढ़ भक्ति उत्पन्न कराये, वही पिता, गुरु, बन्धु, पुत्र और अधीश्वर है॥१७॥ यदि बालक अज्ञान-वश असन्मार्ग में जाता है तो करुणानिधान पिता उसे उस मार्ग से लौटाता है॥१८॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की भक्ति का त्याग कराकर पुत्र को अन्य विषयों में प्रवृत्त कराने वाला पिता कुत्सित पिता है। दारा (स्त्री) ग्रहण करना केवल दुःखदायी होता है, सुखकारक नहीं। वह तप, स्वर्ग, भुक्ति एवं मुक्ति के कर्मों में व्यव-धायक है॥१९-२०॥ ब्रह्मन्! मूढ़चेता गृहस्थों के यहाँ तीन प्रकार की साध्वी, भोग्या और कुलटा स्त्रियाँ होती हैं। ये सभी स्वार्थपरायण होती हैं॥२१॥ साध्वी परलोक के भय से और अपने यश के लिए तथा कामानुराग वश भी निरन्तर पति की सेवा करती हैं॥२२॥ भोगार्थिनी भोग्या केवल भोग के लिए कामानुरागवश कान्त की सेवा

भोग्या भोगार्थिनी शश्वत्कामस्नेहेन केवलम्। कुरुते कान्तसेवां च न च भोगादृते क्षणम् ॥२३॥
वस्त्रालंकारसंभोगसुस्निग्धाहारमुत्तमम्। यावत्प्राप्नोति सा भोग्या तावच्च वशगा प्रिया ॥२४॥
कुलाङ्गारसमा नारी कुलटा कुलनाशिनी। कपटात्कुरुते सेवां स्वामिनो न च भक्तितः ॥२५॥
सदा पुंयोगमाशंसुर्मनसा मदनातुरा। आहारादधिकं जारं प्रार्थयन्ती नवं नवम् ॥२६॥
जारार्थे स्वपतिं तात हन्तुमिच्छति पुंश्चली। तस्यां यो विश्वसेन्मूढो जीवनं तस्य निष्फलम् ॥२७॥
कथिता योषितः सर्वा उत्तमाधममध्यमाः। स्वात्मारामा विजानन्ति मनस्तासां न पण्डिताः ॥२८॥
हृदयं क्षुरधाराभं शरत्पद्मोत्सवं मुखम्। सुधासमं सुमधुरं वचनं स्वार्थसिद्धये ॥२९॥
प्रकोपे विषतुल्यं च विश्वासे सर्वनाशनम्। दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं निगूढं कर्म केवलम् ॥३०॥
सदा तासामविनयः प्रबलं साहसं परम्। दोषोत्कर्षश्छलोत्कर्षः शश्वन्माया दुरत्यया ॥३१॥
पुंसश्चाष्टगुणः कामः शश्वत्कामो जगद्गुरो। आहारो द्विगुणो नित्यं नैष्ठुर्यं च चतुर्गुणम् ॥३२॥
कोपः पुंसः षड्गुणश्च व्यवसायश्च निश्चितम्। यत्रेमे दोषनिवहाः काऽऽस्था तत्र पितामह ॥३३॥
का क्रीडा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रमलवेश्मनि। तेजः प्रणष्टं संभोगे दिवाऽऽलापे यशःक्षयः ॥३४॥

करती है। और किसी हेतु से वह क्षण भर भी सेवा नहीं करती ॥२३॥ वह जब तक वस्त्र, आभूषण, सम्भोग और अत्यन्त स्निग्ध एवं उत्तम पदार्थ पाती है तभी तक वह पति के अधीन रहकर प्यारी बनी रहती है ॥२४॥ कुलटा स्त्री कुल में अंगार के समान है तथा कुलनाशिनी है। वह पति की सेवा सदैव कपटपूर्वक करती है, भक्तिपूर्वक कभी नहीं। वह सदा कामातुर रहकर पुरुष-संयोग चाहती रहती है। आहार से अधिक नये-नये जार पुरुष को चाहती है ॥२५-२६॥ तात ! जार के निमित्त यह पुंश्चली अपने पति की हत्या कर देती है। इसलिए जो मूर्ख उसमें विश्वास रखता है, उसका जीवन व्यर्थ है ॥२७॥ इस प्रकार मैंने उत्तम अधम और मध्यम स्त्रियों को बता दिया है। इनके मनोभाव को स्वात्माराम (अपने आप में रमण करने वाले योगी) ही जान सकते हैं, पंडित नहीं ॥२८॥ उनका हृदय क्षुर की धार के समान (तीक्ष्ण) और मुख शारदीय कमल के समान (कोमल) होता है। वह अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अमृत समान अत्यन्त मधुर वाणी बोलती है ॥२९॥ कोप करने पर विष के समान उनके मुख से दुःसह वचन निकलता है। उनकी बातों पर विश्वास करने से सर्वनाश हो जाता है। उनके अभिप्राय को समझना बहुत कठिन है। केवल उनका कर्म अत्यन्त निगूढ़ होता है ॥३०॥ उन लोगों में सदा अविनयभाव (उद्दण्डता) प्रबल और पराकाष्ठा का साहस, दोषों और कपटों का उत्कर्ष तथा निरन्तर दुरत्यय (कठिनता से पार की जाने वाली) माया होती है ॥३१॥ जगद्गुरो ! इनमें पुरुषों से आठ गुना अधिक काम निरन्तर बना रहता है और आहार की मात्रा दुगुनी तथा निष्ठुरता चौगुनी होती है ॥३२॥ पुरुष से छह गुना अधिक कोप तथा उद्योग होता है। पितामह ! जिसमें इतने दोषसमूह वर्तमान रहते हैं, उस पर आस्था क्या होगी ? मलमूत्रभाण्डागार रूप स्त्री-शरीर से पुरुष को क्या सुख मिलेगा और क्या मनोविनोद होगा ? उससे सम्भोग करने पर तेज का क्षय होता है और दिन में बातचीत करने से यश का नाश होता है ॥३३-३४॥ उससे

धनक्षयोऽतिप्रीतौ चात्यासक्तौ च वपुःक्षयः। साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे माननाशनम्॥
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किं सुखम् ॥३५॥
यावद्धनी च तेजस्वी सश्रीको योग्यतापरः। पुमान्नारीं वशीकर्तुं समर्थस्तावदेव हि॥३६॥
रोगिणं निर्धनं वृद्धं योषिद्वै प्रेक्षतेऽप्रियम्। लोकाचारभयात्तस्मै ददात्याहारमल्पकम्॥३७॥
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्नात्मागमो यथा। सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वात्मारामेश्वरो भवान्॥३८॥
अनुग्रहं कुरु विभो विदायं देहि सांप्रतम्। कृष्णभक्तिं प्रार्थयामि त्वयि कल्पतरोः परे॥३९॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र धृत्वा तातपदाम्बुजम्। आज्ञां ययाचे पितरं गन्तुं तपसि मङ्गले॥४०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकंधरः। कृत्वा प्रदक्षिणं नत्वा ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः॥४१॥
गच्छन्तं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतां मुने। रुरोदोच्चैर्मुक्तकण्ठं महासांसारिको यथा॥४२॥
करे धृत्वा समालिङ्ग्य चुचुम्ब च पुनः पुनः। चिरं वक्षसि कृत्वा च वासयामास जानुनि॥४३॥
स्वात्मारामेश्वरो ब्रह्मा योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। भेदं सोढुं न शक्तोऽभूद्विच्छेदो दुःसहो नृणाम्॥४४॥
कातरः पुत्रभेदेन मोहितो विष्णुमायया। शोकार्तो वक्तुमारेभे सुतं संबोध्य शौनक॥४५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० ब्रह्म० सौ० ब्रह्मनारदसंवादो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

अति प्रीति करने पर धन का नाश, अत्यन्त आसक्त होने पर शरीर का नाश, संयोग करने से पौरुष-नाश, कलह करने से माननाश और विश्वास करने से सर्वनाश होता है। अतएव ब्रह्मन्! स्त्रियों से क्या सुख मिल सकता है? ॥३५॥ जब तक मनुष्य धनी, तेजस्वी, श्रीसम्पन्न और योग्य है तभी तक वह स्त्रियों को वशीभूत रखने में समर्थ होता है ॥३६॥ स्त्रियाँ रोगी निर्धन और वृद्ध पति को प्रेम से नहीं देखती हैं, केवल लोकाचार के भय से उसे थोड़ा भोजन दे देती हैं॥३७॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने अपने बोध के अनुसार सब कुछ बता दिया। सर्वज्ञ! आप सब कुछ जानते हैं। क्योंकि आप आत्माराम पुरुषों के अधीश्वर हैं। अब मुझे बिदा दें। विभो! मेरे ऊपर कृपा करें। आप कल्पवृक्ष से भी बढ़कर हैं। मैं आपसे श्रीकृष्ण-भक्ति की याचना करता हूँ॥३८-३९॥ इतना कहकर नारद ने पिता ब्रह्मा के चरण-कमलों को पकड़कर संगलमय तप के निमित्त जाने के लिये उनसे आज्ञा माँगी॥४०॥ उपरान्त वे हाथ जोड़कर भक्ति से ग्रीवा झुकाकर ब्रह्मा की प्रदक्षिणा और नमस्कार करके (तपस्यार्थ) जाने को उद्यत हो गये॥४१॥ मुने! पुत्र को तप के हेतु जाते हुए देखकर जगत् के विधाता ब्रह्मा, महासंसारी (अज्ञानी) प्राणी की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे॥४२॥ अनन्तर उनका हाथ पकड़ कर आलिंगन और बार-बार चुम्बन करके वक्षःस्थल से चिपका कर देर तक घुटनों पर बैठाये रहे॥४३॥ स्वात्मारामों (योगी पुरुषों) के ईश्वर और योगीन्द्रों के गुरु के गुरु होते हुए भी ब्रह्मा उनका वियोग सहन करने में समर्थ न हो सके। क्योंकि वियोग मनुष्यों के लिए दुःसह होता है॥४४॥ शौनक! भगवान् विष्णु की माया से मोहित होने के कारण पुत्र-वियोग-जन्य दुःख से कातर और शोकार्त्त होकर (ब्रह्मा) पुत्र को सम्बोधित करके कहने लगे॥४५॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्म-नारद-संवाद नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीब्रह्मोवाच

त्वं गच्छ तपसे वत्स किं मे संसारकर्मणि । अहं यास्यामि गोलोकं विज्ञातुं कृष्णमीश्वरम् ।।१।।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो वैरागी चतुर्थः पुत्र एव च ।।२।।
यती हंसी चारुणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा । पुत्रास्तपस्विनः सर्वे किं मे संसारकर्मणि ।।३।।
वचस्करो मरीचिर्मे अङ्गिराश्च भृगुस्तथा । [1]रुचिरत्रिः कर्दमश्च प्रचेताश्च क्रतुर्मनुः ।।४।।
वसिष्ठो वशगः शश्वत्सर्वेषु च सुतेषु च । अन्येऽविवेकिनोऽसाध्याः किं ते संसारकर्मणि ।।५।।
निबोध वत्स वक्ष्यामि वेदोक्तं वचनं शुभम् । पारम्पर्यक्रमपरं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।६।।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सर्वे वाञ्छन्ति पण्डिताः । वेदप्रणिहितानेतान्सभासु मुनिशंसितान् ।।७।।
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः । आदौ विप्रो यज्ञसूत्रं परिधाय सुखं सुखी ।।८।।
समधीत्य ततो वेदान्ददाति गुरुदक्षिणाम् । ततः प्रकृष्टकुलजां सुविनीतां समुद्वहेत् ।।९।।

अध्याय २४

ब्रह्मा द्वारा नारद को गृहस्थ-धर्म का उपदेश

ब्रह्मा बोले—वत्स ! तुम तप करने के लिए चले जाओ। मुझे भी इस संसार-सृष्टि से क्या (प्रयोजन) है ? मैं भगवान् कृष्ण को जानने के लिए गोलोक जाऊँगा ।।१।। क्योंकि सनक, सनन्दन, सनातन और चौथा पुत्र सनत्कुमार—ये सब विरागी हो गये। यति, हंसी, आरुणि, वोढु, पञ्चशिख आदि पुत्र भी तपस्वी हो गये। तो मुझे इस संसार की सृष्टि से क्या (प्रयोजन) है ।।२-३।। मेरी बात मानने वाले मरीचि, अंगिरा, भृगु, रुचि, अत्रि, कर्दम, प्रचेता क्रतु और मनु ये मेरे आज्ञापालक हैं। इन सब पुत्रों में अधिक आज्ञापालक वशिष्ठ है जो सदा मेरे अधीन रहता है। उपर्युक्त पुत्रों के सिवा अन्य सब के सब अविवेकी तथा मेरी आज्ञा से बाहर हैं। ऐसी दशा में मेरा संसार की सृष्टि से क्या प्रयोजन है ? ।।४-५।। वत्स ! सुनो, मैं तुम्हें वेदोक्त मंगलमय वचन सुना रहा हूँ। वह वचन परम्पराक्रम से पालित होता आ रहा है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को देने वाला है ।।६।। वेदों में लिखित और समाओं में मुनियों द्वारा प्रशंसित धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को सभी विद्वान् चाहते हैं ।।७।। वेद में जिसका विधान है, वह धर्म है और जिसका निषेध है वह अधर्म है। ब्राह्मण सर्वप्रथम सुखपूर्वक यज्ञोपवीत धारण कर वेदों का अध्ययन करे, पश्चात् गुरुदक्षिणा प्रदान करे। इसके बाद किसी उत्तम कुल की अत्यन्त विनीत कन्या का पाणिग्रहण (विवाह) करे ।।८-९।। उत्तम कुल में उत्पन्न नारी पतिव्रता तथा सदैव

१क. ०चिर्बर्हिः क०

सा साध्वी कुलजा या च पतिसेवासु तत्परा। सद्वंशे दुर्विनीता च संभवेन्न कदाचन
आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥१०॥
असद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नारद। दुर्विनीता च सा दुष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु ॥११॥
न वत्स दुष्टाः सर्वाश्च योषितः कमलाकलाः। स्वर्वेश्यांशाश्च कुलटा असद्वंशसमुद्भवाः ॥१२॥
निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति। न सेवते च कुलटा प्रियं निन्दति सद्गुणम् ॥१३॥
साधुः सद्वंशजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत्। तस्यां पुत्रान्समुत्पाद्य वृद्धस्तु तपसे व्रजेत् ॥१४॥
वरं हुतवहे वासः सर्पवक्त्रे च कण्टके। एतेभ्यो दुःखदो वासः स्त्रिया दुर्मुखया सह ॥१५॥
मत्तोऽधीतस्त्वया वेदो मह्यं च गुरुदक्षिणाम्। पुत्र देहीदमेवेह कुरु दारपरिग्रहम् ॥१६॥
वत्स त्वं कुलजातां च पूर्वपत्नीं च मालतीम्। विवाहं कुरु कल्याण कल्याणे च दिनेऽनघ ॥१७॥
मनुवंशोद्भवस्येह सृञ्जयस्य गृहे सती। त्वत्कृते जन्म लब्ध्वा च कुरुते भारते तपः ॥१८॥
गृहाणीष्व परमां रत्नमालां च कमलाकलाम्। भारते न भवेद्व्यर्थं जनानां तपसः फलम् ॥१९॥
आदौ भवेद्गृही लोको वानप्रस्थस्ततः परम्। ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रम एष श्रुतौ श्रुतः ॥२०॥
वैष्णवानां हरेरर्चा तपस्या च श्रुतौ श्रुता। वैष्णव त्वं गृहे तिष्ठ कुरु कृष्णपदार्चनम् ॥२१॥

पति-सेवा में तत्पर रहती है। कुल की स्त्री कभी दुर्विनीता नहीं होती है। पद्मराग मणि की खान में काचमणि कैसे उत्पन्न हो सकती है? ॥१०॥ नारद! नीच कुल में उत्पन्न स्त्री ही माता-पिता के दोष से दुर्विनीता (उद्धतस्वभावा), दुष्ट और सभी कर्म करने में स्वतन्त्र होती है ॥११॥ वत्स! सभी स्त्रियाँ दुष्टा नहीं होती हैं; क्योंकि वे लक्ष्मी की कलायें हैं। जो अप्सराओं के अंश से तथा नीच कुल में उत्पन्न होती हैं, वे ही स्त्रियाँ कुलटा हुआ करती हैं ॥१२॥ पतिव्रता स्त्री गुणहीन पति की भी सेवा और प्रशंसा करती है, किन्तु कुलटा स्त्री सदगुणी पति की भी सेवा नहीं करती है, अपितु उसके सद्गुणों की निन्दा ही करती है ॥१३॥ इसीलिए साधुप्रकृति के पुरुष प्रयत्नपूर्वक सत्कुलीना कन्या के साथ विवाह कर उससे पुत्रोत्पादन करते हैं और वृद्ध होने पर तपस्या के लिए चले जाते हैं ॥१४॥ अग्नि, सर्प के मुख और काँटे पर निवास करना अच्छा है किन्तु मुख से दुर्वचन निकालने वाली स्त्री के साथ रहना कदापि अच्छा नहीं है, वह इन अग्नि, सर्प और कंटक से भी अधिक दुःखदायिनी होती है। ॥१५॥ पुत्र! मुझसे तुमने वेदाध्ययन किया है, अतः मुझे यही गुरुदक्षिणा प्रदान करो—'तुम विवाह कर लो।' वत्स! तुम्हारी पूर्वपत्नी कुलीना मालती ने पुनः जन्म ग्रहण किया है। निष्पाप! किसी शुभ दिन में उसके साथ विवाह करो ॥१६-१७॥ मनुवंश में उत्पन्न राजा सृञ्जय के घर में जन्म लेकर वह सती तुम्हें पाने के लिए भारतवर्ष में तप कर रही है ॥१८॥ इस समय उसका नाम रत्नमाला है। वह लक्ष्मी की कला है। तुम उसे ग्रहण करो। क्योंकि भारतवर्ष में मनुष्यों के तप का फल व्यर्थ नहीं होता है ॥१९॥ मनुष्य सर्वप्रथम गृहस्थ, अनन्तर वानप्रस्थ और उसके पश्चात् मोक्ष के लिए तपस्वी (संन्यासी) हो—ऐसा क्रम वेदों में सुना गया है ॥२०॥ वेदों में कहा गया है कि भगवान् की अर्चना करना ही वैष्णवों की तपस्या है ॥२१॥ अतः वैष्णव! तुम घर में रहो और भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की अर्चना

अन्तर्बाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा सुत ॥२२॥
नान्तर्बाह्ये हरिर्यस्य तस्य किं तपसा फलम्। तपसा हरिराराध्यो नान्यः कश्चन विद्यते॥२३॥
यत्र तत्र कृतं कृष्णसेवनं परमं तपः। वत्स मद्वचनेनैव गृहे स्थित्वा हरिं भज॥२४॥
गृही भव मुनिश्रेष्ठ गृहीणां सर्वदा सुखम्। कामिन्यां[1] सुखसंभोगः स्वर्गभोगसमो मतः॥२५॥
तद्दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखात्स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं वरम्॥२६॥
ततः सुखतमे पुत्रदर्शनस्पर्शने मुने। सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्तिता॥२७॥
पुत्रप्रयोजना कान्ता शतकान्ताप्रियः सुतः। नास्ति पुत्रात्परो बन्धुर्नास्ति पुत्रात्परः प्रियः॥२८॥
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत्पुत्रादेकात्पराजयम्। न चाऽऽत्मनोऽप्रियोऽर्थश्च तस्मादपि सुतः प्रियः॥२९॥
अतः प्रियतमे पुत्रे न्यसेदात्मपरं धनम्। इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा विरराम च शौनक
उवाच वचनं तातं नारदो ज्ञानिनां वरः ॥३०॥

नारद उवाच

स्वयं विज्ञाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने। प्रवर्तयत्यसन्मार्गे स दयालुः कथं पिता॥३१॥
जलबुद्बुदवत्सर्वं संसारमतिनश्वरम्। जलरेखा यथा मिथ्या तथा ब्रह्मञ्जगत्त्रयम्॥३२॥

करो। पुत्र! जिसके भीतर और बाहर विष्णु विराजमान हैं, उसे तप करने की क्या आवश्यकता है॥२२॥ निष्पाप! जिसके भीतर-बाहर हरि नहीं हैं उसे भी तप करने से क्या लाभ हो सकता है? क्योंकि तप द्वारा विष्णु की ही अर्चना की जाती है अन्य की नहीं॥२३॥ पुत्र! जहाँ-तहाँ कहीं भी रहकर की हुई श्रीकृष्ण की सेवा सर्वोत्तम तप है। अतः तुम मेरी बात मानकर घर रहो और भगवान् को भजो॥२४॥ मुनिश्रेष्ठ! गृही बनो, गृहस्थों को सर्वदा सुख मिलता है। कामिनी का सुख-सम्भोग स्वर्गभोग के समान है॥२५॥ मुमुक्षु पुरुष भी उसका दर्शन और स्पर्शन चाहते हैं। सभी के स्पर्श-सुख से स्त्री का स्पर्श-सुख श्रेष्ठ कहा गया है॥२६॥ मुने! उससे अधिक सुख-दायक पुत्रदर्शन और उसका स्पर्शन होता है। सबसे अधिक प्रिय पत्नी होती है। इसलिए उसे 'प्रिया' कहा गया है॥२७॥ पुत्ररूप प्रयोजन सम्पन्न करने के लिए स्त्री की आवश्यकता होती है और सैकड़ों स्त्रियों से भी अधिक प्रिय पुत्र होता है। पुत्र से बढ़ कर बन्धु और प्रिय कोई नहीं है॥२८॥ सबसे जीतने की इच्छा करे। एकमात्र पुत्र से ही पराजय की कामना करे। कोई भी प्रिय पदार्थ अपने लिए नहीं (पुत्र के लिए) रखा जाता है, इसलिए पुत्र प्रिय होता है॥२९॥ अतः प्रियतम पुत्र को अपना श्रेष्ठ धन भी सौंप देना चाहिए। शौनक! इतना कह कर ब्रह्मा चुप हो गये। अनन्तर ज्ञानिश्रेष्ठ नारद ने अपने पिता से कहा॥३०॥

नारद बोले—जो स्वयं वेदों और दर्शनों को जानकर अपने पुत्र को निकृष्ट मार्ग में लगाता है वह पिता दयालु कैसे कहा जा सकता है?॥३१॥ ब्रह्मन्! यह समस्त संसार जल के बुलबुले के समान अत्यन्त नाशशील और जल-रेखा की भाँति मिथ्या है॥३२॥ हरिदास्य को छोड़कर इस चञ्चल मन को विषय-वासना में नहीं लगाना चाहिए।

१क. ०मिन्या सह सं०।

विहाय हरिदास्यं च विषये यन्मनश्चलम्। दुर्लभं मानवं जन्म मा भूत्तन्निष्फलं क्वचित्॥३३॥
का वा कस्य प्रिया पुत्रो बन्धुः को वा भवार्णवे। कर्मोर्मिभिर्योजना च तदपायो वियोजना॥३४॥
सुकर्म कारयेद्यो हि तन्मित्रं स पिता गुरुः। दुर्बुद्धि जनयेद्यो हि स रिपुः स्यात्कथं पिता॥३५॥
इत्येवं कथितं तात वेदबीजं यथागमम्। ध्रुवं तथाऽपि कर्तव्यं तवाऽऽज्ञापरिपालनम्॥३६॥
आदौ यास्यामि भगवन्नरनारायणाश्रमम्। नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम्॥३७॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम पितुः पुरः। पुष्पवृष्टिस्तदुपरि तत्क्षणेन बभूव ह॥३८॥
क्षणं पितुः पुरः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः। उवाच च पुनर्वेदं वचनं मङ्गलप्रदम्॥३९॥

नारद उवाच

देहि मे कृष्णमन्त्रं च यन्मनोवाञ्छितं मम। तत्संबन्धि च यज्ज्ञानं यत्र तद्गुणवर्णनम्॥४०॥
ततः पश्चात्करिष्यामि त्वत्प्रीत्या दारसंग्रहम्। मानसे परिपूर्णे च कार्यं कर्तुं पुमान्सुखी॥४१॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः कमलोद्भवः। उवाच पुनरेवेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः॥४२॥

ब्रह्मोवाच

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद्विचक्षणः। विविक्ताश्रमिणां चैव न[1] मन्त्रः सुखदायकः॥४३॥
निषेकाल्लभ्यते मन्त्रो [2]गुरुर्भर्ता च कामिनी। विद्या सुखं भयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च॥४४॥

क्योंकि यह मानव-जन्म दुर्लभ है, अतः यह कहीं निष्फल न हो जाये॥३३॥ इस संसार-सागर में कौन किसकी प्रिया, कौन पुत्र और कौन बन्धु है। कर्मों की तरंगों द्वारा सबका संयोग होता है और कर्मों के नाश से ये एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं॥३४॥ जो सुकर्म कराता है, वही मित्र, पिता और गुरु है। और जो दुर्बुद्धि उत्पन्न कराता है, वह पिता नहीं शत्रु है॥३५॥ तात! इस प्रकार मैंने शास्त्र के अनुसार वेद का बीज (सारतत्त्व) कहा है। यद्यपि यह ध्रुव सत्य है तथापि मुझे आपकी आज्ञा का पालन करना चाहिए॥३६॥ भगवन्! पहले मैं नरनारायण के आश्रम में जाऊँगा। वहाँ नारायण की वार्ता सुनने के पश्चात् दारपरिग्रह (विवाह) करूँगा॥३७॥ इतना कह कर नारद मुनि पिता के सम्मुख चुप हो गये। उसी क्षण उनके ऊपर पुष्पों की वृष्टि हुई॥३८॥ मुनिश्रेष्ठ नारद थोड़ी देर पिता के सामने खड़े रहकर पुनः मंगलप्रद वचन बोले॥३९॥

नारद बोले—मुझे भगवान् श्रीकृष्ण का मंत्र प्रदान कीजिये, जो मेरे मन को अत्यन्त अभीष्ट है। श्रीकृष्ण मंत्र संबंधी जो ज्ञान है तथा जिसमें उनके गुणों का वर्णन है, वह सब भी मुझे बताइए॥४०॥ उसके अनन्तर आपकी प्रसन्नता के लिए मैं विवाह करूँगा। क्योंकि अभीष्ट कार्य की सिद्धि होने पर ही मनुष्य सुखी होकर अन्य कार्यों में प्रवृत्त होता है॥४१॥ ज्ञानवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा नारद की बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और फिर पुत्र से बोले॥४२॥

ब्रह्मा ने कहा—बुद्धिमान् व्यक्ति पिता और पति से मंत्र न ले। संन्यासियों से मंत्र लेना भी सुखदायक नहीं होता है॥४३॥ मनुष्य जन्म-कर्मानुसार मंत्र गुरु, स्वामी, स्त्री, विद्या, सुख, भय तथा दुःख प्राप्त करता है। इन्हें वह स्वेच्छा से प्राप्त नहीं कर सकता॥४४॥ वत्स! महेश्वर तुम्हारे पुरातन गुरु हैं और हमारे भी। अतः

१क. न पुत्रः सु०। २क. ०र्भक्ता च।

महेश्वरस्तव गुरुः प्राक्तनो नः पुरातनः। गच्छ वत्स शिवं शान्तं शिवदं ज्ञानिनां गुरुम् ॥४५॥
तत एव भवान्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुरातनात्। नारायणकथां श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ मद्गृहम् ॥४६॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च शौनक। प्रणम्य पितरं भक्त्या शिवलोकं ययौ मुनिः ॥४७॥

इति श्री० म० सौ० ब्र० ब्रह्मनारदोक्तसंसारसुखासुखवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः।

सौतिरुवाच

क्षणेन विप्रप्रवरो मुदाऽन्वितो जगाम शंभोः सदनं मनोहरम्।
उध्वं ध्रुवाद्योजनलक्षमीप्सितं महार्हरत्नौघविनिर्मितं महत् ॥१॥
निराश्रये योगबलेन शंभुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम्।
दृष्टं सुपुण्याशयसाधकैर्वरैर्मुनीन्द्रवर्यैः[1] परिपूरितं शुभम् ॥२॥
मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव केवलम्।
प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्धितैरुच्चैरसंख्याप्रमितैः शिखोज्ज्वलैः ॥३॥

उन्हीं शिव के पास जाओ, जो शान्त, कल्याणप्रद और ज्ञानियों के गुरु हैं ॥४५॥ उन्हीं प्राचीन गुरु से मन्त्र लेकर नारायण की कथा-वार्ता सुनो और शीघ्र मेरे घर लौट आओ ॥४६॥ शौनक! जगत् के विधाता (ब्रह्मा) इतना कहकर चुप हो गये और नारद मुनि भी भक्तिपूर्वक पिता को प्रणाम करके शिवलोक को चले गये ॥४७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्म-नारद-संवाद-प्रकरण में संसार के सुख-दुःख वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

नारद को भगवान् शिव का दर्शन

सौति बोले—विप्रवर नारद प्रसन्न होकर क्षणभर में शंकर के मनोहर सदन में पहुँच गये, जो ध्रुव से भी एक लाख योजन ऊपर अत्यन्त अमूल्य रत्नों से बनाया गया है ॥१॥ आधारशून्य आकाश में शंकर ने योगबल द्वारा अनेक भाँति के विचित्र भवनों से अपने लोक को सजा दिया है। पवित्र अन्तःकरण वाले श्रेष्ठ साधकों तथा मुनीन्द्र-शिरोमणि महात्माओं से वह लोक परिपूर्ण है ॥२॥ सूर्य और चन्द्रमा की किरणें वहाँ नहीं पहुँचती हैं। परकोटों के रूप में ऊँचे, बहुत बढ़े हुए तथा ज्वालाओं से जगमगाते हुए असंख्य पावक उस लोक को घेरकर स्थित हैं ॥३॥ वह उत्तमपुरी एक लाख योजन विस्तृत है, जिसमें उत्तम रत्नों से भूषित तीन करोड़ गृह हैं, जो

१क. ०रैर्मणीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम्।

पुरं वरं योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा।
विराजितं हीरकसारनिर्मितैश्चित्रैर्विचित्रैर्विविधैर्मनोहरैः ॥४॥
माणिक्यमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः।
आकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनैर्निषेवितं संततमेव शौनक ॥५॥
सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षकैस्त्रिकोटिलक्षैश्च युतं स्वपार्षदैः।
युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च भैरवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशतैश्च वेष्टितम् ॥६॥
सुरद्रुमैर्वेष्टितमेव संततं मन्दारवृक्षप्रवरैः सुपुष्पितैः।
विराजितं सुन्दरकामधेनुभिर्यथा बलाकाशतकैर्नभस्तलम् ॥७॥
दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किं[1] नात्र चित्रं सुरयोगिनां गुरौ।
लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं भीमृत्युरोगार्तिजराहरं वरम् ॥८॥
दूरे सभामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोहरम्।
पद्मत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम् ॥९॥
प्रतप्तहेमाभजटाधरं विभुं दिगम्बरं शुभ्रमनन्तमक्षरम्।
मन्दाकिनीपुष्करबीजमालया कृष्णेति नामैव मुदा जपन्तम् ॥१०॥

हीरों के सारभाग से निर्मित, चित्रविचित्र मनोहर तथा अनेक प्रकार के हैं ॥४॥ द्विज! शौनक! वे मणियों, **मोतियों** और मणि के दर्पणों से सुशोभित हैं, जिन्हें विश्वकर्मा स्वप्न में भी नहीं देख सकते। ऐसे महलों में **एकमात्र** शिवभक्त ही निरन्तर वास करते हैं ॥५॥ वह शिवलोक सौ करोड़ लाख सिद्धों और तीन करोड़ लाख **शिव-पार्षदों** से युक्त है। वहाँ तीन लाख विकट भैरव निवास करते हैं। सैकड़ों लाख क्षेत्र उसे घेरे हुए हैं ॥६॥ **सुन्दर** पुष्पों से भरे हुए मंदार आदि देववृक्षों से वह सदा आवेष्टित है। सुन्दर कामधेनुएँ उस धाम की उसी तरह **शोभा** बढ़ाती हैं जैसे सैकड़ों बलाकाएँ आकाश की ॥७॥ उसे देखकर मुनि नारद के मन में आश्चर्य उत्पन्न हुआ। **वे सोचने** लगे—जहाँ ज्ञानियों तथा योगियों के गुरु निवास करते हैं, वहाँ ऐसी विचित्रता का होना क्या आश्चर्य **है?** यह लोक तीनों लोकों से विलक्षण, श्रेष्ठ एवं भय, मृत्यु, रोग, दुःख और जरा का अपहरण करनेवाला है ॥८॥ **वहाँ नारद ने** दूर से देखा कि शंकर सभा-मंडप के मध्यभाग में विराजमान हैं जो शान्त, कल्याणप्रद, मनोहर, कमल **की** भाँति तीन नेत्र वाले, चन्द्रमाओं की भाँति (आनन्ददायक) पाँच मुख वाले और गंगाजी तथा निर्मल चन्द्रमा का **मुकट** धारण करने वाले हैं ॥९॥ वे अत्यन्त तपाये गये सुवर्ण की भाँति प्रभापूर्ण जटा धारण किये हुए हैं। दिग-**म्बर,** उज्ज्वल वर्ण, अनन्त एवं अविनाशी शिव आकाशगंगा में उत्पन्न कमलों के बीज की माला से भगवान् श्रीकृष्ण **का नाम** आनन्द से जप रहे हैं ॥१०॥ उनके कंठ में सुन्दर नील चिह्न शोभा पाता है। वे नागराज के हार से अलं-

---

१क. किमत्र चि०।

सुनीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम्।
सिद्धेश्वरं सिद्धविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम् ॥११॥

प्रसन्नहास्यास्यमनोहरं वरं विश्वाश्रयाणां शिवदं वरप्रदम्।
सदाऽऽशुतोषं भवरोगवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैकबन्धुम् ॥१२॥

गत्वा समीपं मुनिरेष शूलिनं ननाम मूर्ध्ना पुलकाङ्कविग्रहः।
वीणां त्रितन्त्रीं क्वणयन्पुनर्जगौ कृष्णं स तुष्टाव कलं सुकण्ठः ॥१३॥

दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरं च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां वरिष्ठम्।
योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह हर्षेण पीठादुदपश्यदीश्वरः ॥१४॥

ददौ च तस्मै मुनये ससंभ्रमादालिङ्गनं चाऽऽशिषमासनादिकम्।
पप्रच्छ भद्रागमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसां च शौनक ॥१५॥

सद्रत्नसिंहासनसुन्दरे परश्चोवास शंभुर्वरपार्षदैः सह।
नोवास धातुस्तनयः कृताञ्जलिस्तुष्टाव भक्त्या प्रणतः प्रभुं द्विज ॥१६॥

गन्धर्वराजेन कृतेन नारदः स्तोत्रेण रम्येण शुभप्रदेन च।
स्तुत्वा प्रणामं पुनरेव कृत्वा भवाज्ञयोवास भवस्य वामतः ॥१७॥

कृत हैं। बड़े-बड़े योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र और मुनीन्द्र उनके चरणों की वंदना करते हैं। वे सिद्धेश्वर हैं, सिद्धि-विधान के कारण है, मृत्युंजय हैं तथा काल और यम का भी अंत करने वाले हैं। उनका मुख प्रसन्नतासूचक हास्य से अत्यन्त सुन्दर है। वे सम्पूर्ण आश्रितों को कल्याण तथा अभीष्ट वर प्रदान करने वाले हैं। सदा शीघ्र ही सन्तुष्ट होने वाले, भवरोग से रहित भक्तजनों के प्रिय तथा भक्तों के एकमात्र बंधु हैं ॥११-१२॥ ऐसे शूली शंकर जी के समीप जाकर रोमाञ्चित शरीर से मुनि ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। पश्चात् तीन तार वाली अपनी वीणा की झंकार करते हुए वे मधुर सुन्दर वाणी द्वारा भगवान् कृष्ण का गुण-गान करने लगे ॥१३॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ मुनीन्द्र-प्रवर ब्रह्मपुत्र नारद को देखकर मुसकराते हुए शिव योगीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों और महर्षियों समेत आसन से उठकर खड़े हो गए ॥१४॥ शौनक! शंकर जी ने निःसंकोच तपोधन नारद का आलिंगन किया और उन्हें आशिष, आसन आदि प्रदान कर उनके शुभा-गमन का प्रयोजन पूछा ॥१५॥ द्विज! भगवान् शंकर उत्तम रत्नों के सुन्दर सिंहासन पर अपने पार्षदों समेत पुनः विराजमान हो गये, किन्तु ब्रह्मपुत्र नारद उस पर न बैठ कर केवल हाथ जोड़े भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रभु शिव की स्तुति करने लगे ॥१६॥ पश्चात् गन्धर्वराज कृत सुन्दर और शुभप्रद वेदोक्त स्तोत्र से स्तुति करके पुनः प्रणाम करने के अनन्तर शिवजी की आज्ञा ले नारद उनके वाम भाग में बैठ गये ॥१७॥ वहीं

चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽभिलाषं निजकामपूरके।
श्रुत्वा मुनेस्तद्वचनं कृपानिधिर्द्रुतं प्रतिज्ञाय चकार चोमिति॥१८॥

इति श्री० म० सौ० ब्र० कैलासं प्रति नारदागमनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः।

सौतिरुवाच

हरिस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं पूजाविधिं परम्। हरं ययाचे देवर्षिर्ध्यानं च ज्ञानमेव च॥१॥
स्तोत्रं च कवचं मन्त्रं ध्यानं पूजाविधिं तथा। तत्प्राक्तनीयज्ञानं च ददौ तस्मै महेश्वरः॥२॥
सर्वं प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः। उवाच प्रणतो भक्त्या गुरुं प्रणतवत्सलम्॥३॥

नारद उवाच

आह्निकं ब्राह्मणानां च वद वेदविदां वर। स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः॥४॥

श्रीमहेश्वर उवाच

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे। सूक्ष्मे सहस्रपत्रे स्वे निर्मले ग्लानिवर्जिते॥५॥

उन्होंने जगत् की कामनाओं के पूरक भगवान् शिव से अपना मनोऽभिलाष प्रकट किया। मुनि की बातें सुनकर कृपानिधान शंकर जी ने भी शीघ्र प्रतिज्ञापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा'॥१८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारद का कैलाश-प्रस्थान नामक
पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त॥२५॥

अध्याय २६

आह्निक आचार तथा भगवत्पूजन की विधि

सौति बोले—देवर्षि नारद ने भगवान् शंकर से श्रीहरि के स्तोत्र, कवच, मन्त्र, परमोत्तम पूजाविधान, ध्यान और तत्त्वज्ञान की याचना की॥१॥ महेश्वर ने स्तोत्र, कवच, मन्त्र, ध्यान, पूजाविधान और उनका प्राक्तन ज्ञान उन्हें प्रदान किया॥२॥ मुनिश्रेष्ठ नारद वह सब कुछ पाकर सफल मनोरथ हो गए। उन्होंने प्रणत होकर भक्तिपूर्वक अपने भक्तवत्सल गुरु से कहा॥३॥

नारद बोले—वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ आप ब्राह्मणों के आह्निक (नित्यकर्म या दिनचर्या) बताने की कृपा करें, जिससे प्रतिदिन स्वधर्म का पालन हो सके॥४॥

श्रीमहेश्वर बोले—ब्राह्ममुहूर्त (४ बजे रात) में शय्या से उठकर वस्त्र बदल कर अपने ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सूक्ष्म, निर्मल, ग्लानिरहित सहस्रदल कमल पर विराजमान गुरुदेव का परम चिन्तन करे। ध्यान में यह देखे कि

रात्रिवासं परित्यज्य गुरुं तत्रैव चिन्तयेत्। व्याख्यामुद्राकरं प्रीतं सस्मितं शिष्यवत्सलम्॥६॥
प्रसन्नवदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम्। साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपं च[1] परमं चिन्तयेत्सदा॥७॥
ध्यात्वैवं गुरुमाराध्य हृत्पद्मे निर्मले सिते। सहस्रपत्रे विस्तीर्णे देवमिष्टं विचिन्तयेत्॥८॥
यस्य देवस्य यद्ध्यानं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत्। गृहीत्वा तदनुज्ञां च कर्तव्यं समयोचितम्॥९॥
आदौ ध्यात्वा गुरुं नत्वा संपूज्य विधिपूर्वकम्। पश्चात्तदाज्ञामादाय ध्यायेदिष्टं प्रपूजयेत्॥१०॥
गुरुप्रदर्शितो देवो मन्त्रः पूजाविधिर्जपः। न देवेन गुरुर्दृष्टस्तस्माद्देवाद्गुरुः परः॥११॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः॥१२॥
गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत्। गुरुरेव परं ब्रह्म नास्ति पूज्यो गुरोः परः॥१३॥
अभीष्टदेवे रुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः। न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः॥१४॥
यस्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे। यस्य रुष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा॥१५॥
न संपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद्भ्रमात्। ब्रह्महत्याशतं पापी लभते नात्र संशयः॥१६॥
सामवेदे च भगवानित्युवाच हरिः स्वयम्। तस्मादभीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः॥१७॥

ब्रह्मरन्ध्रवर्ती सहस्रदल कमल पर गुरुजी प्रसन्नतापूर्वक बैठे हैं, मंद-मंद मुसकरा रहे हैं, व्याख्या की मुद्रा में उनका हाथ उठा हुआ है और शिष्य के प्रति उनके हृदय में बड़ा स्नेह है। मुख पर प्रसन्नता छा रही है। वे शान्त तथा निरन्तर सन्तुष्ट रहने वाले हैं और साक्षात् परब्रह्म स्वरूप हैं। सदा इसी प्रकार उनका चिन्तन करना चाहिए। इस तरह ध्यान कर के मन-ही-मन गुरु की आराधना करे। तदनन्तर निर्मल, श्वेत, सहस्रदलभूषित, विस्तृत हृदय-कमल पर विराजमान इष्टदेव का चिन्तन करे। जिस देवता का जैसा ध्यान और जो रूप बताया गया है, वैसा ही चिन्तन करना चाहिए। क्रम यह है कि पहले गुरु का ध्यान करके उन्हें प्रणाम करे। फिर उनकी विधिवत् पूजा करने के पश्चात् उनकी आज्ञा ले इष्टदेव का ध्यान एवं पूजन करे। गुरु ही देवता के स्वरूप का दर्शन कराते हैं। वे ही इष्टदेव के मंत्र, पूजाविधि और जप का उपदेश देते हैं। गुरु ने इष्टदेव को देखा है, किन्तु इष्टदेव ने गुरु को नहीं देखा है, इसलिए गुरु इष्टदेव से भी बढ़कर हैं॥५-११॥ इसलिए गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देव महेश्वर, गुरु आदि ईश्वरी प्रकृति और गुरु ही चन्द्र, अग्नि एवं सूर्य हैं॥१२॥ गुरु वायु, वरुण, माता-पिता, मित्र एवं परब्रह्म हैं। इसलिए गुरु से बढ़ कर कोई अन्य पूज्य नहीं है। ।१३॥ अभीष्ट देव के क्रुद्ध होने पर गुरु उससे रक्षा करने में समर्थ होता है। किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर उससे रक्षा करने में सारे देवता भी मिल कर समर्थ नहीं होते हैं॥१४॥ जिस पर गुरु संतुष्ट रहता है, उसकी विजय पद-पद पर होती है और जिस पर गुरु रुष्ट रहता है, उसका सदैव सर्वनाश होता है॥१५॥ बिना गुरु की पूजा किए जो मूर्ख देव की पूजा करता है, वह पापी सौ ब्रह्महत्या का भागी होता है, इसमें संशय नहीं ॥१६॥ इसे सामवेद में भगवान् विष्णु ने स्वयं कहा है। इसलिए गुरु इष्टदेव से भी बढ़ कर परम पूजनीय है॥१७॥

१क. च शिष्याणां चित्तनायकम् ॥७॥ ध्यात्वा हृदाऽऽज्ञामादाय हृ०।

[1]गुरुमिष्टं स्वयं ध्यात्वा स्तुत्वा वै साधको मुने[2]। निर्मलं स्थलमासाद्य विण्मूत्रं ह्युत्सृजेन्मुदा ॥१८॥
जलं जलसमीपं च सरन्ध्रं प्राणिसंनिधिम्। देवालयसमीपं च वृक्षमूलं च वर्त्म च ॥१९॥
हलोत्कर्षस्थलं चैव सस्यक्षेत्रं च गोष्ठकम्। नदीकन्दरगर्भं च पुष्पोद्यानं च पङ्किलम् ॥२०॥
ग्रामाद्यभ्यन्तरं चैव नृणां गृहसमीपकम्। शङ्कुसेतुं शरवणं श्मशानं वह्निसंनिधिम् ॥२१॥
क्रीडास्थलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलं तथा। वृक्षच्छायायुतं स्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम् ॥२२॥
दूर्वास्थानं कुशस्थानं वल्मीकस्थानमेव च। वृक्षारोपणभूमिं च कार्यार्थं च परिष्कृतम् ॥२३॥
एतत्सर्वं परित्यज्य सूर्यतापविवर्जितम्। कृत्वा गर्तं पुरीषं च मूत्रं च परिवर्जयेत् ॥२४॥
पुरीषमूत्रोत्सर्गं च दिवा कुर्यादुदङ्मुखः। पश्चिमाभिमुखो रात्रौ संध्यायां दक्षिणामुखः ॥२५॥
मौनी धृत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न संचरेत्। त्यक्त्वा मृदा समाच्छाद्य शौचं कुर्याद्विचक्षणः ॥२६॥
कृत्वा तु लोष्टशौचं च जलशौचं ततः परम्। मृद्युक्तं तज्जलं चैव तत्प्रमाणं निशामय ॥२७॥
एकां लिङ्गे मृदं दद्याद्वामहस्ते चतुष्टयम्। उभयोर्हस्तयोर्द्वे तु मूत्रशौचं प्रकीर्तितम् ॥२८॥
मूत्रशौचं द्विगुणितं मैथुनानन्तरं यदि। मैथुनानन्तरं यद्वा मूत्रशौचं चतुर्गुणम् ॥२९॥

मुने! इस प्रकार सर्वप्रथम गुरु और इष्टदेव का स्वयं ध्यान और स्तुति करके प्रसन्न मन से निर्मल स्थान में जाकर मल-मूत्र का त्याग करे ॥१८॥ जल, जल के समीप, बिलयुक्त भूमि, प्राणियों के निवास के निकट, देवालय के समीप, वृक्षमूल, मार्ग, जोते हुए खेत, बीज बोये गए हुए खेत, गौओं के स्थान, नदी, कन्दरा के भीतर का स्थान, फुलवाड़ी कीचड़युक्त अथवा दलदल की भूमि, गाँव आदि के भीतर की भूमि, लोगों के घर के आसपास का स्थान, मेंख या खंभे के पास, पुल, सरकंडों के वन, श्मशान भूमि, अग्नि के समीप क्रीडास्थल, विशाल वन, मचान के नीचे का स्थान, पेड़ की छाया से युक्त स्थान, जहाँ भूमि के भीतर प्राणी रहते हों वह स्थान, जहाँ ढेर-के-ढेर पत्ते जमा हों वह स्थान, बाँबी, जहाँ वृक्ष लगाए गये हों वहाँ की भूमि तथा जो किसी विशेष कार्य के लिए झाड़-बुहार कर साफ की गई हो वह भूमि—इन सब को छोड़कर सूर्य के ताप से रहित स्थान में गड्ढा बना कर मल-मूत्र का त्याग करे ॥१९-२४॥ दिन में उत्तराभिमुख होकर मल मूत्र का त्याग करे और रात्रि में पश्चिमाभिमुख होकर मल-मूत्र का त्याग करे। संध्या समय दक्षिण दिशा की ओर मुख कर के मल-मूत्रोत्सर्ग करना चाहिए ॥२५॥ उस समय मौन रह कर जोर-जोर से साँस न लेते हुए मलत्याग करना चाहिए, जिससे (भीतर) दुर्गन्ध न प्रवेश कर सके। अनन्तर बुद्धिमान् पुरुष गुदा आदि अंगों को शुद्ध करे। पहले ढेले या मिट्टी से गुदा आदि की शुद्धि करे। तत्पश्चात् उसे जल से धोकर शुद्ध करे। मृत्तिकायुक्त जो जल शौच के काम में आता है, उसका प्रमाण सुनो ॥२६-२७॥ मूत्रत्याग के पश्चात् लिंग में एक बार, बाँये हाथ में चार बार और दोनों हाथों में दो बार मिट्टी लगानी चाहिए ॥२८॥ उसी प्रकार मैथुन के अनन्तर मूत्रत्याग की शुद्धि में दूनी या चौगुनी संख्या में मिट्टी लगानी चाहिए ॥२९॥

---

१ क. ०मिष्टसुरं ध्या०। २ क. ०ने। वेदोक्तं स्थ०।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश। उभयोः सप्त दातव्याः पादः षष्ठेन शुध्यति ॥३०॥
पुरीषशौचं विप्राणां गृहिणामिदमेव च। विधवानां द्विगुणितं शौचमेवं प्रकीर्तितम् ॥३१॥
वैष्णवानां यतीनां च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम्। चतुर्गुणं च गृहिणां तेषां शौचं प्रकीर्तितम् ॥३२॥
नो यावदुपनीयेत द्विजः शूद्रस्तथाऽङ्गना। गन्धलेपक्षयकरं तेषां शौचं प्रकीर्तितम् ॥३३॥
शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानां गृहिणां समम्। द्विगुणं वैष्णवादीनां मुनीनां परिकीर्तितम् ॥३४॥
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सता। प्रायश्चित्तं प्रयुज्येत विहितातिक्रमे कृते ॥३५॥
शौचं तन्नियमं मत्तः सावधानं निशामय। मृच्छौचे च शुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्च व्यतिक्रमे ॥३६॥
वल्मीकमूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा। शौचावशिष्टां गेहाच्च नाऽऽदद्याल्लेपसंभवाम् ॥३७॥
अन्तःप्राण्यवपर्णां च हलोत्खातां विशेषतः। कुशमूलोत्थितां चैव दूर्वामूलोत्थितां तथा ॥३८॥
अश्वत्थमूलान्नीतां च तथैव शयनोत्थिताम्। चतुष्पथाच्च गोष्ठानां गोष्पदानां तथैव च ॥३९॥
सस्यस्थलानां क्षेत्राणामुद्यानानां मृदं त्यजेत्। स्नातो वाऽप्यथवाऽस्नातो विप्रः शौचेन शुद्ध्यति ॥४०॥
शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। कृत्वा शौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेत्सुधीः ॥४१॥

मलत्याग के पश्चात् लिंग में एक बार, गुदा में तीन बार, बाँयें हाथ में दश बार, दोनों हाथों में सात बार और चरण में छह बार मिट्टी लगाने से शुद्धि होती है ॥३०॥ गृहस्थ ब्राह्मणों के लिए मलत्याग के अनन्तर यही शौच बताया गया है। विधवाओं के लिए दूनी शुद्धि बतायी गयी है ॥३१॥ यति, वैष्णव, ब्रह्मर्षि और ब्रह्मचारी के लिए गृहस्थ की अपेक्षा चौगुनी शुद्धि कही गयी है ॥३२॥ यज्ञोपवीत-संस्कार-रहित द्विजों, शूद्रों और स्त्रियों के लिए केवल उतने जल से शुद्धि कही गयी है, जितने से वह स्थान स्वच्छ हो जाए। क्षत्रियों और वैश्यों के लिए भी गृहस्थ द्विजों के समान ही शुद्धि कही गयी है। वैष्णव आदि मुनियों के लिए दुगुनी शुद्धि बतायी गयी है ॥३३-३४॥ शुद्धि के इच्छुकों को इससे न्यूनाधिक शुद्धि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि विधि का उल्लंघन करने पर वह प्रायश्चित्त का भागी होता है ॥३५॥ शौच (शुद्धि) का नियम मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। क्योंकि मिट्टी से शुद्धि करने पर ब्राह्मण शुद्ध होता है और नियम का उल्लंघन करने पर वह अशुद्ध ही रहता है ॥३६॥

वल्मीक की मिट्टी, चूहे की खोदी हुई मिट्टी, जल के भीतर की मिट्टी, शुद्धि करने से शेष बची हुई मिट्टी और घर की दीवाल की मिट्टी से शुद्धि नहीं करनी चाहिए लीपने-पोतने के काम में लायी हुई मिट्टी शौच के लिए त्याज्य है। जिसके भीतर प्राणी रहते हों, जहाँ वृक्ष से गिरे हुए पत्तों के ढेर लगे हों तथा जहाँ की भूमि हल से जोती गई हो, वहाँ की मिट्टी न ले। कुश और दूर्वा की जड़ से निकाली गई, पीपल की जड़ के निकट से लायी गई तथा शयन की वेदी से निकाली गई मिट्टी को भी शौच के काम में न लाये। चौराहे की, गोशाला की, गाय की खुरी की, जहाँ खेती लहलहा रही हो उस खेत की तथा उद्यान की मिट्टी को भी त्याग दे। ब्राह्मण नहाया हो अथवा नहीं, उपर्युक्त शौचाचार के पालन मात्रसे शुद्ध हो जाता है ॥३७-४०॥ शुद्धिहीन पुरुष नित्य अशुद्ध रहता है अतः वह सभी कर्मों के करने में अयोग्य रहता है। विद्वान् ब्राह्मण इस प्रकार शुद्धि कर के मुँह धोये ॥४१॥ पहले सोलह

आदौ षोडश गण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय च। दन्तकाष्ठेन दन्तांश्च तत्पश्चात्परिमार्जयेत् ॥४२॥
पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत्। दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ॥४३॥
निरूपितं सामवेदे हरिणा चाऽऽह्निकक्रमे। अपामार्गं सिंधुवारमाम्रं च करवीरकम् ॥४४॥
खदिरं च शिरीषं च जातिपुन्नागशालकम्। अशोकमर्जुनं चैव क्षीरिवृक्षं कदम्बकम् ॥४५॥
जम्बूकं बकुलं तोक्मं पलाशं च प्रशस्तकम्। बदरीं पारिभद्रं च मन्दारं शाल्मलिं तथा ॥४६॥
वृक्षं कण्टकयुक्तं च लतादि पारिवर्जयेत्। पिप्पलं च प्रियालं च तिन्तिडीकं च तालकम् ॥४७॥
खर्जूरं नारिकेलं च तालं च परिवर्जयेत्। दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः ॥४८॥
शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। कृत्वा शौचं शुचिर्विप्रो धृत्वा धौते च वाससी ॥४९॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य प्रातःसंध्यां समाचरेत्। एवं त्रिसंध्यं सन्ध्यां च कुरुते कुलजो द्विजः ॥५०॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु त्रिसध्यं यः समाचरेत्। संध्यात्रितयहीनः स्यादनर्हः सर्वकर्मसु ॥५१॥
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्। नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥५२॥
स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः। पूर्वां संध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमां तथा ॥५३॥
ब्रह्महत्यामात्महत्यां प्रत्यहं लभते द्विजः। एकादशीविहीनो यः संध्याहीनश्च यो द्विजः ॥५४॥
कल्पं व्रजेत्कालसूत्रं यथा हि वृषलीपतिः। प्रातः संध्यां विधायैवं गुरुमिष्टं सुरं रविम् ॥५५॥

बार कुल्ला कर के मुख शुद्ध करने के पश्चात् काठ की दातून से दाँतों को रगड़ कर शुद्ध करे ॥४२॥ अनन्तर पुनः सोलह बार कुल्ला कर के मुख शुद्ध करे। नारद ! दातून के नियमों को सुनो, जिसे स्वयं विष्णु ने सामवेद के आह्निक प्रकरण में बताया है

अपामार्ग (चिचिरा), म्योड़ी, आम, करवीर (कनेर) खैर, सिरस, जायफल, नागकेशर, साखू, अशोक, अर्जुन, गूलर कदम्ब, जामुन, मौलसिरी, तोक्म (जौ आदि की हरी बाल) और पलाश की दातून प्रशस्त होती है। बेर, देवदारु, मदार, सेमर और काँटे वाले वृक्ष तथा लता, पीपल, चिरौंजी, इमली, ताड़, खजूर और नारियल की दातून नहीं करनी चाहिए। दाँतों की शुद्धि से रहित प्राणी को सभी शुद्धि से रहित समझना चाहिए ॥४३-४८॥ शुद्धि रहित प्राणी अशुद्ध होने के नाते सभी कर्मों के अयोग्य होता है। इसलिए ब्राह्मण शुद्धि करने के उपरान्त स्नान करके दो धुले हुए वस्त्र पहन कर चरण धोकर आचमन कर के प्रातःसन्ध्या सम्पन्न करे। इस प्रकार जो कुलीन द्विज तीनों काल में संध्योपासना करता है, वह सभी तीर्थों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त करता है। क्योंकि तीनों संध्याओं से रहित प्राणी सभी कर्मों के अयोग्य है ॥४९-५१॥ ऐसा व्यक्ति दिन में जो कर्म करता है उसका फल उसे नहीं मिलता है। जो द्विज प्रातः और संध्या समय की संध्या को सम्पन्न नहीं करता है, उसे शूद्र की भाँति सभी द्विजकर्मों से पृथक् रखना चाहिए। क्योंकि प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल की संध्या को न करने वाला द्विज प्रतिदिन ब्रह्महत्या और आत्महत्या का भागी होता है। इसी भाँति जो एकादशी व्रत और संध्या से हीन है, वह द्विज शूद्रा से सम्बन्ध रखने वाले पापी की भाँति कालसूत्र नामक नरक में कल्पपर्यन्त पड़ा रहता है। इस प्रकार प्रातः सन्ध्या सम्पन्न करके गुरु, इष्टदेव, सूर्य, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, देवी, लक्ष्मी और सरस्वती को प्रणाम करे। अनन्तर गुरु,

ब्रह्माणमीशं विष्णुं च मायां पद्मां सरस्वतीम्। प्रणम्य गुरुलाज्यं च दर्पणं मधु काञ्चनम्[1] ॥५६॥
स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्यात्साधकसत्तमः। पुष्करिण्यां तु वाप्यां वा यदा स्नानं समाचरेत् ॥५७॥
समुद्धृत्य पञ्च पिण्डानादौ धर्मी विचक्षणः। नद्यां नदे कन्दरे वा तीर्थे वा स्नानमाचरेत् ॥५८॥
कुर्यात् स्नात्वा तु संकल्पं ततः स्नानं पुनर्मुने। श्रीकृष्णप्रीतिकामश्च वैष्णवानां महात्मनाम् ॥५९॥
संकल्पो गृहिणां चैव कृतपातकनाशनः। विप्रः कृत्वा तु संकल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत् ॥६०॥
वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिकृते नरः। अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥६१॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्। उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥६२॥
आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रमोचय। पुण्यं देहि महाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम् ॥६३॥
इत्युक्त्वा च जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम्। चतुर्हस्तप्रमाणां च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम् ॥६४॥
तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तं दत्त्वा तपोधन। यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते ॥६५॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ॥६६॥
नलिनी नन्दिनी सीता मालिनी च महापगा। [2]विष्णुपादाब्जसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥६७॥
पद्मावती भोगवती स्वर्णरेखा च कौशिकी। दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवाऽमृता ॥६८॥
विद्याधरी [3]सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी। क्षेमा च वैष्णवी शान्ता[4] शान्तिदा गोमती सती ॥६९॥

घृत, दर्पण, मधु और सुवर्ण का स्पर्श करके उत्तम साधक समयानुसार स्नान आदि करे। जब पोखर या बावली में स्नान करे तब धर्मात्मा एवं विद्वान् पुरुष पहले उसमें से पाँच पिंड मिट्टी निकालकर बाहर फेंक दे। नदी, नद, गुफा या तीर्थ में स्नान करना चाहिए ॥५२-५८॥ मुने! स्नान करके संकल्प करे। तदनन्तर पुनः स्नान के लिए संकल्प करे। वैष्णव महात्माओं का संकल्प भगवान् श्रीकृष्ण के प्रीत्यर्थ होता है ॥५९॥ और गृहस्थों का वह संकल्प किए हुए पापों के नाश के उद्देश्य से होता है। ब्राह्मण संकल्प करके शरीर में वेदोक्त मंत्रों द्वारा मिट्टी लगाए। (मन्त्र)—हे वसुन्धरे! तुम अश्वों और रथों से आक्रान्त हो। विष्णु ने भी तुम्हें (अपने चरणों से) आक्रान्त किया है। मृत्तिके! मैंने जो पाप किए हैं उनका अपहरण कर लो। सैकड़ों भुजाओं से सुशोभित वराहरूपधारी श्रीकृष्ण ने एकार्णव के जल से तुम्हारा उद्धार किया है। तुम मेरे अंगों पर आरूढ़ हो समस्त पापों को दूर कर दो। महाभागे! मुझे पुण्य प्रदान करो और मुझे स्नान करने के लिए आज्ञा दो। तपोधन! इस प्रकार कह कर नाभि-प्रमाण जल में मन्त्रपूर्वक चार हाथ लम्बा-चौड़ा शुभ मण्डल बनाये और उसमें हाथ लगाकर तीर्थों का आवाहन करे। जो-जो तीर्थ हैं, उन सब का वर्णन कर रहा हूँ ॥६०-६५॥ हे गंगे, यमुने, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे, सिन्धु तथा कावेरि! इस जल में निवास करो ॥६६॥ उपरान्त नलिनी, नन्दिनी, सीता, महानदी मालिनी और भगवान् विष्णु के चरण-कमल से उत्पन्न त्रिपथगामिनी गंगा, पद्मावती, भोगवती, स्वर्णरेखा, कौशिकी, दक्षा, पृथिवी, सुभगा, विश्वकाया, शिवामृता, सुप्रसन्ना विद्याधरी, लोकप्रसाधिनी,

---

१क. ०म्। ५६॥ दृष्ट्वा। २ क. ०दार्ध्य सं०। ३ क सुपत्ना च त०। ४ क. ०न्ता प्रमदा गो०।

सावित्री तुलसी दुर्गा महालक्ष्मीः सरस्वती। कृष्णप्राणाधिका राधा लोपामुद्रा दिती रतिः ॥७०॥
अहल्या चादितिः संज्ञा स्वधा स्वाहाऽप्यरुन्धती। शतरूपा देवहूतिरित्याद्याः संस्मरेत्सुधीः ॥७१॥
स्मृत्वा स्नात्वा महापूतः कुर्यात्तु तिलकं बुधः। बाह्वोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशे च वक्षसि ॥७२॥
स्नानं दानं तपो होमो देवता पितृकर्म च। तत्सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना ॥७३॥
ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्यात्संध्यां च तर्पणम्। नमस्कृत्य सुरान्भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदाऽन्वितः ॥७४॥
प्रक्षाल्य पादौ यत्नेन धृत्वा धौते च वाससी। मन्दिरं प्रविशेत्प्राज्ञ इत्याह हरिरेव च ॥७५॥
विना पादक्षालनं यः स्नात्वा विशति मन्दिरम्। तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमादिपञ्चकम् ॥७६॥
परिधाय स्निग्धवस्त्रं गृहं च प्रविशेद्गृही। रुष्टा लक्ष्मीर्गृहाद्याति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥७७॥
जङ्घोर्ध्वतश्च यो विप्रःपादौ प्रक्षालयेद्यदा। तावद्भवति चाण्डालो यावद्गङ्गां न पश्यति ॥७८॥
उपविश्याऽऽसने ब्रह्मञ्छुचिराचम्य साधकः। पूजां कुर्यात्तु वेदोक्तां भक्तियुक्तो हि संयतः ॥७९॥
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां जले स्थले। गोपृष्ठे वा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः ॥८०॥
सर्वेषु शस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद। सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च ॥८१॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८२॥

क्षेमा, वैष्णावी, शान्ता, शान्तिदा, गोमती, सती, सावित्री, तुलसी, दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, श्रीकृष्ण-प्राणाधिका राधिका, लोपामुद्रा, दिति, रति, अहल्या, अदिति, संज्ञा, स्वाहा, स्वधा, अरुन्धती, शतरूपा और देवदूति आदि का स्मरण बुद्धिमान् पुरुष करे ॥६७-७१॥ स्नान द्वारा महापवित्र होकर पण्डित को अपनी बाहु के मूलभाग, ललाट, कण्ठ और वक्षःस्थल में तिलक लगाना चाहिए ॥७२॥ क्योंकि बिना तिलक लगाए स्नान, दान, तप, हवन, देवकर्म, पितृकर्म—सब कुछ निष्फल हो जाता है ॥७३॥ ब्राह्मण, को सर्वप्रथम तिलक लगा कर संध्या-तर्पण कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए। उपरान्त भक्तिपूर्वक देवों को प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक घर जाना चाहिए ॥७४॥ वहाँ यत्नपूर्वक पैर धोकर धुले हुए दो वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष मन्दिर में जाय, यह साक्षात् हरि का ही कथन है ॥७५॥ जो स्नानोपरान्त बिना चरण प्रक्षालन किए मन्दिर में प्रवेश करता है, उसके स्नानादि और जप, हवन आदि पाँच कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥७६॥ जो गृहस्थ पुरुष जल से भीगे या तेल से तर वस्त्र पहन कर गृह में प्रवेश करता है, उससे रुष्ट होकर लक्ष्मी उसके गृह से निकल जाती हैं और अत्यन्त दारुण शाप देती हैं ॥७७॥ जो ब्राह्मण चरण धोने के समय जंघा के ऊपर तक धो डालता है, उससे वह तब तक चाण्डाल बना रहता है, जब तक गंगाजी का दर्शन नहीं कर लेता है ॥७८॥ ब्रह्मन्! पवित्र साधक आसन पर बैठ कर आचमन करे। उपरान्त संयम एवं भक्तिपूर्वक वेदोक्त विधि से इष्टदेव की पूजा करे ॥७९॥ शालग्राम, मणि, मन्त्र, प्रतिमा, जल, स्थल, गोपृष्ठ, गुरु और ब्राह्मण में भगवान् की अर्चना प्रशस्त मानी गयी है ॥८०॥ किन्तु नारद! भगवान् की सब से प्रशस्त पूजा शालग्राम में होती है; क्योंकि उसमें सभी देवों का अधिष्ठान रहता है ॥८१॥ अतः जिसने शालग्राम-जल से अभिषेक किया, वह मानो समस्त तीर्थों में स्नान और सभी यज्ञों की दीक्षा

शालग्रामजलं भक्त्या नित्यमश्नाति यो नरः। जीवन्मुक्तः स च भवेद्यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् ॥८३॥
शालग्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद। सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम् ॥८४॥
तत्र यो हि मृतो देही ज्ञानाज्ञानेन दैवतः। रत्ननिर्मितयानेन स याति श्रीहरेः पदम् ॥८५॥
शालग्रामं विनाऽन्यत्र कः साधुः पूजयेद्धरिम्। कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्णं फलं लभेत् ॥८६॥
पूजाधारश्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः। हरेः पूजां बहुमतां कथयामि यथागमम् ॥८७॥
कश्चिद्ददाति हरये चोपचारांश्च षोडश। सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं भक्त्या च वैष्णवः ॥८८॥
कश्चिद्द्वादश वस्तूनि पञ्च वस्तूनि कश्चन। येषामेव यथा[1]शक्तिर्भक्तिर्मूलं च पूजने ॥८९॥
आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। पुष्पं चन्दनधूपं च दीपं नैवेद्यमुत्तमम् ॥९०॥
गन्धं माल्यं च शय्यां च ललितां सुविलक्षणाम्। जलमन्नं च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥९१॥
गन्धान्नतल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश। पाद्यार्घ्यजलनैवेद्यपुष्पाण्येतानि पञ्च च ॥९२॥
सर्वाण्येतानि मूलेन दद्यात्साधकसत्तमः। गुरूपदिष्टं मूलं च प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥९३॥
आदौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणायामं ततः परम्। अङ्गप्रत्यङ्गयोर्न्यासं मन्त्रन्यासं ततः परम् ॥९४॥
वर्णन्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत्। त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र कूर्मं प्रपूजयेत् ॥९५॥

ग्रहण कर चुका ॥८२॥ क्योंकि जो नित्य भक्तिपूर्वक शालग्राम जल का पान करता है वह जीवन्मुक्त होता है और अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के धाम में पहुँचता है ॥८३॥ नारद! शालग्राम शिला का चक्र जहाँ रहता वहाँ समस्त तीर्थ और चक्र समेत भगवान् अवश्य रहते हैं ॥८४॥ अतः वहाँ जो देहधारी भाग्यवश जानकर या अनजान में अपनी देह का त्याग करता है, वह रत्नखचित विमान पर बैठ कर श्री विष्णु भगवान् के धाम को जाता है ॥८५॥ कौन ऐसा साधु पुरुष है, जो शालग्राम शिला के सिवा अन्यत्र भगवान् की पूजा करेगा ? क्योंकि उसमें भगवान् की अर्चना करने से परिपूर्ण फल की प्राप्ति होती है ॥८६॥ इस प्रकार मैंने भगवान् की पूजा का आधार बता दिया, अब बहुमत से निश्चित और शास्त्र के अनुकूल पूजन-क्रम के बारे में सुनो ॥८७॥

कोई वैष्णव भक्तिभाव से सोलह सुन्दर और पवित्र उपचार भगवान् को नित्य अर्पित करते हैं ॥८८॥ इसी प्रकार कोई बारह और कोई पाँच वस्तुओं का उपचार समर्पित करते हैं। किन्तु जिन लोगों की जैसी शक्ति और भक्ति हो उन्हें उसी के अनुसार पूजन करना चाहिए। पूजा की जड़ है—भगवान् के प्रति भक्ति ॥८९॥ आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, पुष्प, चन्दन, दीप, उत्तम नैवेद्य, सुगन्ध, माला, सुन्दर और विलक्षण शय्या, जल, अन्न, ताम्बूल——सामान्यतः अर्पित करने योग्य सोलह उपचार हैं ॥९०-९१॥ गन्ध, अन्न, शय्या और ताम्बूल को छोड़ कर शेष द्रव्य बारह उपचार हैं। पाद्य, अर्घ्य, जल, नैवेद्य और पुष्प——ये पाँच उपचार हैं। श्रेष्ठ साधक ये सभी वस्तुएँ मूल मन्त्र द्वारा अर्पित करे। गुरु के उपदेश से प्राप्त मूल मन्त्र समस्त कर्मों में प्रशस्त कहा गया है ॥९२-९३॥ सर्वप्रथम भूत-शुद्धि करके प्राणायाम करे। तदनन्तर अंगन्यास, प्रत्यंगन्यास और वर्णन्यास कर के अर्घ्यपात्र प्रस्तुत करे। पहले त्रिकोण मण्डल बना कर उसमें कूर्म (कच्छप भगवान्) की पूजा करे ॥९४-९५॥ अनन्तर द्विज जलपूर्ण

---

१ क. ०क्तिर्यथा मू०।

जलेनाऽऽपूर्य शङ्खं च तत्र संस्थापयेद्द्विजः। जलं संपूज्य विधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्ततः॥९६॥
पूजोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत्पुनः। ततो गृहीत्वा पुष्पं च कृत्वा योगासनं शुचिः॥९७॥
ध्यानेन गुरुदत्तेन ध्यायेत्कृष्णमनन्यधीः। ध्यात्वा पाद्यादिकं सर्वं दद्यान्मूलेन साधकः॥९८॥
अङ्गप्रत्यङ्गदेवं च तन्त्रोक्तं पूजयेद्धरिम्। मूलं जप्त्वा यथाशक्ति देवे[1] मन्त्रं[2] समर्पयेत्॥९९॥
दत्त्वोपहारं विविधं स्तुत्वा च कवचं पठेत्। ततः कृत्वा परीहारं मूर्ध्ना च प्रणमेद्भुवि॥१००॥
कृत्वा वै देवपूजां च यज्ञं कुर्याद्विचक्षणः। श्रौतस्मार्ताग्नियुक्तं च बलिं दद्यात्ततो मुने॥१०१॥
नित्यश्राद्धं यथाशक्ति दानं वित्तानुरूपकम्। कृत्वा कृती स विहरेत्क्रम एष श्रुतौ श्रुतः॥१०२॥
इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम्। आह्निकस्य च विप्राणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१०३॥

इति श्री ब्रह्म० महा० ब्रह्म० शिवनारदसंवाद आह्निकनिरूपणं
नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

शंख वहाँ रख कर उस जल की सविधि अर्चा करके उसमें समस्त तीर्थों का आवाहन करे॥९६॥ पुनः उसी जल से पूजा की समस्त वस्तुओं को प्रक्षालित करे। इसके बाद पवित्र साधक पुष्प लेकर योगासन पर बैठे और गुरु के बताए हुए ध्यान के अनुसार अनन्य भाव से भगवान् श्रीकृष्ण का चिन्तन करे। इस प्रकार ध्यान-साधक मूल मंत्र का उच्चारण करते हुए पाद्य आदि सभी उपचार अर्पित करे॥९७-९८॥इस प्रकार तंत्र के अनुसार अंग-प्रत्यंग देवताओं के साथ भगवान् विष्णु की पूजा करे। मूलमंत्र यथाशक्ति जप करके इष्टदेव को मंत्र समर्पित करे॥९९॥ पुनः अनेक भाँति के उपहार प्रदान करके स्तुति पाठ एवं कवच पाठ करे। पश्चात् विसर्जन करके भूमि पर माथा टेक कर नमस्कार करे॥१००॥ मुने! इस प्रकार देवपूजा करके बुद्धिमान् पुरुष श्रौत तथा स्मार्त अग्नि से युक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे। मुने! यज्ञ के पश्चात् दिक्पाल आदि को बलि देनी चाहिए॥१०१॥ फिर यथाशक्ति नित्य श्राद्ध और वैभव के अनुसार दान करे। यह सब करके पुण्यात्मा साधक आवश्यक आहार-विहार में प्रवृत्त हो॥१०२॥ इस प्रकार मैंने ब्राह्मणों का वेदोक्त उत्तम आह्निकसूत्र तुम्हें बता दिया अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?॥१०३॥

श्रीब्रह्मवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में आह्निकनिरूपण नामक
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२६॥

---

१. ख. दैवम०। २. ख. ०न्त्रं विसर्जये०।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

भक्ष्यं किं वाऽप्यभक्ष्यं च द्विजानां गृहिणां प्रभो। यतीनां वैष्णवानां च विधवाब्रह्मचारिणाम् ॥१॥
किं कर्तव्यमकर्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव वा। सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारण ॥२॥

महेश्वर उवाच

कश्चित्तपस्वी विप्रश्च निराहारो चिरं मुनिः। कश्चित्समीरणाहारी फलाहारी च कश्चन ॥३॥
अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिणीयुतः। येषामिच्छा च या[1] ब्रह्मन्रुचीनां विविधा गतिः ॥४॥
हविष्यान्नं ब्राह्मणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा। नारायणोच्छिष्टमिष्टमभक्ष्यमनिवेदितम् ॥५॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्। विण्मूत्रं सर्वथा प्रोक्तमन्नं च हरिवासरे ॥६॥
ब्राह्मणः कामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे। त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥७॥
न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं च नारद। गृहिभिर्ब्राह्मणैरन्नं संप्राप्ते हरिवासरे ॥८॥

अध्याय २७

ब्राह्मणों के लिए भक्ष्याभक्ष्य आदि का निरूपण

नारद बोले—प्रभो ! गृहस्थ द्विज, यति, वैष्णव, विधवा और ब्रह्मचारी के लिए क्या भक्ष्य और क्या अभक्ष्य है ? तथा उनके कर्तव्य और अकर्तव्य, भोग्य और अभोग्य सभी बातें बताने की कृपा करें; क्योंकि आप सर्वज्ञ, सब के ईश और सब के कारण हैं ॥१-२॥

महेश्वर बोले—कुछ तपस्वी ब्राह्मण मुनि निराहार होते हैं। कोई वायु का आहार और कोई फलाहार करते हैं ॥३॥ ब्रह्मन् ! गृहिणी समेत गृहस्थ लोग यथासमय अन्न का आहार करते हैं। इसी प्रकार जिसकी जैसी रुचि होती है वे वैसा ही करते हैं; क्योंकि रुचियों का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है ॥४॥ किन्तु ब्राह्मण गृही के लिए हविष्यान्न का भोजन सदैव प्रशस्त बताया गया है। नारायण का उच्छिष्ट प्रसाद ही उनके लिए अभीष्ट भोजन है। अभक्ष्य वह है जो (भगवान् को) निवेदित नहीं किया गया है ॥५॥ क्योंकि भगवान् विष्णु को अर्पित न किया गया अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है। इसी प्रकार एकादशी के दिन सब प्रकार का अन्न-जल मल-मूत्र के तुल्य कहा गया है ॥६॥ इसलिए जो ब्राह्मण स्वेच्छा या परेच्छा से एकादशी के दिन अन्न भोजन करते हैं वे तीनों लोकों के पाप भक्षण करते हैं, इसमें संशय नहीं ॥७॥ नारद ! इसलिए एकादशी के दिन गृहस्थ ब्राह्मणों को अन्न कदापि ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥८॥ हरिवासर के दिन गृही, शैव एवं शाक्त ब्राह्मण विचार की कमी के

---

१. क. ०ह्मन्कवीनां वि०।

गृही शैवश्च शाक्तश्च ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । प्रयाति कालसूत्रं च भुक्त्वा च हरिवासरे ॥९॥
कृमिभिः शालिमात्रैश्च भक्षितस्तत्र तिष्ठति । विण्मूत्रभोजनं कृत्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१०॥
जन्माष्टमीदिने रामनवमीदिवसे हरेः । शिवरात्रौ च यो भुङ्क्ते सोऽपि द्विगुणपातकी ॥११॥
उपवासासमर्थश्च फलं मूलं जलं पिबेत् । नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चाऽऽत्मघातकः ॥१२॥
सकृद् भुङ्क्ते हविष्यान्नं विष्णोर्नैवेद्यमेव च । न भवेत्प्रत्यवायी स चोपवासफलं लभेत् ॥१३॥
एकादश्यामनाहारो गृही विप्रश्च भारते । स च तिष्ठति वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥१४॥
गृहिणां [1]शैवशाक्तानामिदमुक्तं च नारद । विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥१५॥
नित्यनैवेद्यभोजी यः श्रीविष्णोः स हि वैष्णवः । नित्यं शतोपवासानां जीवन्मुक्तफलं लभेत् ॥१६॥
वाञ्छन्ति तस्य संस्पर्शं तीर्थान्यखिलदेवताः । आलापं दर्शनं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥१७॥
द्विस्विन्नमन्नं पृथुकं शुद्धं देशविशेषके । नात्यन्तशस्तं विप्राणां भक्षणे न निवेदने ॥१८॥
अभक्ष्यं वै यतीनां च विधवाब्रह्मचारिणाम् । ताम्बूलं च यथा ब्रह्मन्तथैतद्वस्तु न ध्रुवम् ॥१९॥
ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । तपस्विनां च विप्रेन्द्र गोमांससदृशं स्मृतम् ॥२०॥

कारण अन्न भक्षण करने पर कालसूत्र नामक नरक को प्राप्त होते हैं ॥९॥ वहाँ उसे वे ही अन्न कीड़े होकर काट-काट कर खाते हैं। इस प्रकार वह प्राणी मल-मूत्र का भोजन करते हुए चौदह इन्द्र के समय तक वहाँ नरक में निवास करता है॥१०॥ इसी प्रकार (भगवान् कृष्ण की) जन्माष्टमी, रामनवमी और शिवरात्रि के दिन अन्न भक्षण करने वाले को दूना पातक लगता है ॥११॥ उपवास करने में असमर्थ होने पर फल, मूल और जल ग्रहण करे; अन्यथा शरीर नष्ट हो जाने पर मनुष्य आत्महत्या के पाप का भागी होता है ॥१२॥ जो व्रत के दिन एक बार हविष्यान्न का भोजन या भगवान् विष्णु का नैवेद्य भोजन कर के रह जाता है वह (अन्न खाने का) दोषी नहीं होता; अपितु उसे उपवास का फल भी प्राप्त हो जाता है ॥१३॥ इसीलिए भारतवर्ष में गृहस्थ ब्राह्मण एकादशी के दिन अनाहार (उपवास) करते हैं, जिससे वे वैकुण्ठलोक में ब्रह्मा की आयु तक निवास करते हैं ।१४॥ नारद! गृही, शैव, शाक्त और विशेषकर वैष्णव यति तथा ब्रह्मचारियों के लिए यह सब कहा गया है ॥१५॥ भगवान् विष्णु का नित्य नैवेद्य भोजन करने वाला ब्राह्मण वैष्णव है उसे नित्य सौ उपवास और जीवन्मुक्त होने का फल प्राप्त होता है ॥१६॥ उसके स्पर्शन, दर्शन और बातचीत करने के लिए सभी तीर्थ एवं दवगण इच्छुक रहते हैं। इसलिए कि वह समस्त पापों का महान् नाशक होता है ॥१७॥ दो बार पकाया हुआ अन्न तथा चिउरा, जो देश विशेष में शुद्ध माना गया है, ब्राह्मणों के खाने के लिए और भगवान् को समर्पित करने के लिए बहुत प्रशस्त नहीं माना गया है ॥१८॥ ब्रह्मन्! संन्यासी, विधवा, और ब्रह्मचारियों के लिए उक्त चीजें तांबूल की तरह अभक्ष्य हैं। ।१९॥ विप्रेन्द्र! विधवा स्त्रियों, यतियों, ब्रह्मचारियों और तपस्वियों के लिए ताम्बूल गोमांस के समान बताया गया है ॥२०॥

१क. ०वभक्ता ।

सर्वेषां ब्राह्मणानां यदभक्ष्यं शृणु नारद। यदुक्तं सामवेदे च हरिणा चाऽऽह्निकक्रमे॥२१॥
ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टे घृतभोजनम्। दुग्धं लवणसार्धं च सद्यो गोमांसभक्षणम्॥२२॥
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। ऐक्षवं ताम्रपात्रस्थं सुरातुल्यं न संशयः॥२३॥
उत्थाय वामहस्तेन यस्तोयं पिबति द्विजः। सुरापी च स विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः॥२४॥
अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषं च नित्यशः। पीतशेषजलं चैव गोमांससदृशं मुने॥२५॥
[1]वानिङ्गणफलं चैव गोमांसं कार्तिके स्मृतम्। माघे च मूलकं चैव कलम्बीशयने तथा॥२६॥
श्वेतवर्णं च तालं च मसूरं मत्स्यमेव च। सर्वेषां ब्राह्मणानां च त्याज्यं सर्वत्र देशके॥२७॥
मत्स्यांश्च कामतो भुक्त्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्। प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा शुद्धिमाप्नोति वाडवः॥२८॥
प्रतिपत्सु च कूष्माण्डमभक्ष्यं ह्यर्थनाशनम्। द्वितीयायां च बृहतीं भोजनेन स्मरेद्धरिम्॥२९॥
अभक्ष्यं च पटोलं च शत्रुवृद्धिकरं परम्। तृतीयायां चतुर्थ्यां च मूलकं धननाशनम्॥३०॥
कलङ्ककारणं चैव पञ्चम्यां बिल्वभक्षणम्। तिर्यग्योनिं प्रापयेत्तु षष्ठ्यां वै निम्बभक्षकम्॥३१॥
रोगवृद्धिकरं चैव नराणां तालभक्षणम्। सप्तम्यां च तथा तालं शरीरस्य च नाशकम्॥३२॥
नारीकेलफलं भक्ष्यमष्टम्यां बुद्धिनाशकम्। तुम्बी नवम्यां गोमांसं दशम्यां च कलम्बिका॥३३॥

नारद! समस्त ब्राह्मणों के लिए जो अभक्ष्य है और जिसे सामवेद के दैनिक क्रम-प्रकरण में स्वयं हरि ने कहा है, उसे सुनो॥२१॥

ताम्बे के पात्र में दुग्ध, जूठे में घी एवं नमक के साथ दूध पीना तत्काल गोमांस भक्षण के समान है॥२२॥ काँसे और ताँबे के पात्र में नारियल का जल तथा ताँबे के पात्र में मधु और ईख का रस मदिरा के समान होता है, इसमें संशय नहीं॥२३॥ जो द्विज उठकर बाँये हाथ से जल पीता है उसे शराबी और सभी धर्मों से बहिष्कृत जानना चाहिए॥२४॥ मुने! भगवान् विष्णु को निवेदन न किया हुआ अन्न, खाने से बचा हुआ जूठा भोजन और पीने से शेष रहा जल भी गोमांस के समान (निषिद्ध) है॥२५॥ इसी प्रकार कार्तिक में बैंगन, माघ में मूली तथा चौमासे में करमी साग नहीं खाना चाहिए। श्वेत वर्ण का ताड़ फल, मसूर और मत्स्य, किसी भी देश के किसी भी ब्राह्मण को नहीं खाना चाहिए। स्वेच्छा से मछली खाने पर तीन दिन के उपवास के उपरान्त प्रायश्चित्त करने से ब्राह्मण शुद्ध होता है॥२६-२८॥ प्रतिपदा के दिन कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) अभक्ष्य है। उससे अर्थनाश होता है। द्वितीया के दिन वनभाँटा खाना निषिद्ध है। ऐसा करने पर भगवान् विष्णु का स्मरण करे॥२९॥ तृतीया को परवल शत्रुवृद्धिकारक होता है, अतः उस दिन उसे नहीं खाना चाहिए। चतुर्थी को मूली खाने से धननाश होता है॥३०॥ पंचमी में विल्व (बेल) भक्षण करना कलंक का कारण होता है। षष्ठी में नीम खाने से पक्षी आदि योनियों की प्राप्ति होती है॥३१॥ सप्तमी में ताड़ फल भक्षण करने से मनुष्यों को रोग होता है और ताड़ शरीर का भी नाशक है॥३२॥ अष्टमी में नारियल खाने से बुद्धि नाश होता है। नवमी में लौकी गोमांस के समान तथा दशमी के दिन कलम्बी का साग गोमांस के समान त्याज्य है॥३३॥ एकादशी को सेम, द्वादशी को पूतिका (पोई) और त्रयोदशी को **भाँटा**

---

१ ख. कालिङ्गणमित्यर्थः।

एकादश्यां तथा शिम्बी द्वादश्यां पूतिका तथा। त्रयोदश्यां च वार्ताकी न भक्ष्या पुत्रनाशनम् ॥३४॥
चतुर्दश्यां माषभक्ष्यं महापापकरं परम्। पञ्चदश्यां तथा मांसमभक्ष्यं गृहिणां मुने ॥३५॥
गृहिणां प्रोक्षितं मांसं भक्ष्यमन्यदिनेषु च। प्रातःस्नाने तथा श्राद्धे पार्वणे व्रतवासरे ॥३६॥
प्रशस्तं सार्षपं तैलं पक्वतैलं च नारद। कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ॥३७॥
रवौ श्राद्धे व्रताहे च दुष्टं स्त्रीतिलतैलकम्। मांसं च रक्तशाकं च कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥३८॥
निषिद्धं शयनं चैव कूर्ममांसं च मन्त्रितम्। निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिषेवणम् ॥४९॥
रात्रौ च दधिभक्ष्यं च शयनं संध्ययोर्दिने। रजस्वलास्त्रीगमनमेतन्नरककारणम् ॥४०॥
उदक्यवीरयोरन्नं पुंश्चल्यन्नमभक्षकम्। शूद्रान्नं याजकान्नं च शूद्रश्राद्धान्नमेव च ॥४१॥
अभक्ष्यान्नं च विप्रर्षे यदन्नं वृषलीपतेः। [1]ब्रह्मन्वार्धुषिकान्नं च गणकान्नमभक्षकम् ॥४२॥
अग्रदानिद्विजान्नं च चिकित्साकारकस्य च। हस्तचित्राहरौ तैलमग्राह्यं चाप्यभक्षकम् ॥४३॥
मूले मृगे भाद्रपदे मांसं गोमांसतुल्यकम्। मघायां कृत्तिकायां वै चोत्तरासु च नारद ॥४४॥
करोति मैथुनं यो हि कुम्भीपाकं स च व्रजेत्। रोहिण्यां च[2] विशाखायां मैत्रे चैवोत्तरासु च ॥
[1]अमायां कृत्तिकायां च द्विजैः क्षौरं विवर्जितम् ॥४५॥

खाने से पुत्र नाश होता है॥३४॥ मुने! चतुर्दशी को उरद खाना महापापकारी है। अमावस्या को मांस भक्षण गृहस्थों के लिए सर्वथा अभक्ष्य है॥३५॥ गृहस्थों के लिए अन्य दिनों में यज्ञीय मांस भक्ष्य कहा गया है। नारद! प्रातःकाल के स्नान में, पार्वण श्राद्ध में और व्रत के दिन सरसों का तेल तथा पका तेल प्रशस्त कहा गया है। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, रविवार, श्राद्ध और व्रतवार में स्त्री-सहवास तथा तिल का तेल निषिद्ध हैं। उसी प्रकार उस दिन मांस, रक्तवर्ण का साग और कांसे के पात्र में भोजन भी निषिद्ध है॥३६-३८॥ सभी वर्ण के मनुष्यों के लिए दिन में शयन, कछुवे का मांस और स्त्री सम्भोग-सर्वथा निषिद्ध हैं॥३९॥ रात्रि में दही खाने से, दोनों सन्ध्याओं में (सायं-प्रातः) शयन करने से तथा रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग करने से नरक प्राप्त होता है॥४०॥ रजस्वला स्त्री का अन्न, पुंश्चली (व्यभिचारिणी) का अन्न, शूद्र का अन्न, याजक (यज्ञ कराने वाले, पुजारी और पुरोहितों) के अन्न तथा शूद्र के श्राद्धान्न सर्वथा अभक्ष्य हैं॥४१॥ विप्रर्षे! वृषलीपति (शूद्र) का अन्न, सूदखोर का अन्न, गणक (ज्योतिषी) का अन्न अभक्ष्य होता है॥४२॥ अग्रदानी ब्राह्मण (महापात्र) तथा वैद्य के अन्न अभक्ष्य हैं। हस्त और चित्रा नक्षत्रों में तेल अग्राह्य एवं अभक्ष्य है॥४३॥ मूल तथा मृगशिरा नक्षत्रों में और भादों मास में मांस-भक्षण गो-मांस के समान होता है। नारद! मघा, कृत्तिका तथा उत्तरा नक्षत्रों में जो व्यक्ति मैथुन करता है वह कुंभीपाक नरक में जाता है। रोहिणी, विशाखा, अनुराधा, उत्तरात्रय तथा कृत्तिका नक्षत्रों में और अमावास्या तिथि को द्विजों के लिए क्षौर कर्म वर्जित है। जो मैथुन करके देवताओं तथा पितरों का तर्पण करता है, उसका

१. अयं सार्धश्लोकः ख. पुस्तके नास्ति।
२. ख. मघायामिति पाठः।

कृत्वा तु मैथुनं क्षौरं यो देवांस्तर्पयेत्पितॄन् । रुधिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत् ॥४६॥
यत्कर्तव्यमकर्तव्यं यद्भोज्यं यदभोज्यकम् । सर्वं तुभ्यं निगदितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारदं प्रति
शिवोपदेशभक्ष्याभक्ष्यादिविवरणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो । भवान्ब्रह्मस्वरूपं च वद ब्रह्मनिरूपणम् ॥१॥
प्रभो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमीश्वर । किं तद्विशेषणं किंवाऽप्यविशेषणमेव च ॥२॥
किंवा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा । किंवा तल्लक्षणं शस्तं वेदे वा किं निरूपितम् ॥३॥
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किंवा ब्रह्मस्वरूपिणी । प्रकृतेर्लक्षणं किंवा सारभूतं श्रुतौ श्रुतम् ॥४॥
प्राधान्यं कस्य सृष्टौ च द्वयोर्मध्ये वरं परम् । विचार्य मनसा सर्वं सर्वज्ञ वद मां ध्रुवम् ॥५॥

वह जल रक्त के समान होता है तथा उसे देने वाला नरक में पड़ता है। नारद! जो करना चाहिए, जो नहीं करना चाहिए, जो भक्ष्य है और जो अभक्ष्य है, वह सब तुम्हें बताया गया। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥४४-४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में भक्ष्याभक्ष्यवर्णन नामक
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अध्याय २८

परमात्मा के स्वरूप का निरूपण

नारद बोले—जगन्नाथ, जगद्गुरो! आपकी कृपा से सब कुछ सुन चुका, अब आप ब्रह्म का स्वरूप तथा ब्रह्मतत्त्व का निरूपण करने की कृपा करें। प्रभो! ब्रह्म साकार है या निराकार? क्या उसका कुछ विशेषण भी है? अथवा वह विशेषणों से रहित है? वह दृश्य है या अदृश्य? वह देहधारियों की देह में लिप्त रहता है या नहीं? शास्त्रों और वेदों में उसका लक्षण क्या बताया गया है। प्रकृति ब्रह्म से पृथक् है या ब्रह्मस्वरूपिणी? वेद में प्रकृति का सारभूत लक्षण क्या है? सृष्टि में किसकी प्रधानता है? दोनों में कौन श्रेष्ठ है? सर्वज्ञ! यह सब मन से विचार द्वारा निश्चित करके मुझे बताने की कृपा करें ॥१-५॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च । भगवान्कर्तुमारेभे[1] परब्रह्मनिरूपणम् ॥६॥

महादेव उवाच

यद्यत्पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् । सुदुर्लभं च वेदेषु पुराणेषु च नारद ॥७॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान्विराट् । सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्मुने ॥८॥
यद्विशेषणयुक्तं च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च । तन्निरूपितमस्माभिर्वेदे वेदविदां वर ॥९॥
वैकुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा तदा । यदुवाच हरिः किंचिन्निबोध कथयामि ते ॥१०॥
सारभूतं च तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम् । द्वैधभ्रमतमोध्वंससुप्रकृष्टप्रदीपकम् ॥११॥
परमात्मस्वरूपं च परं ब्रह्म सनातनम् । सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहि कर्मणाम् ॥१२॥
प्राणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्मा प्रजापतिः । सर्वज्ञानस्वरूपोऽहं शक्तिः प्रकृतिरीश्वरी ॥१३॥
आत्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिन्वयं स्थिताः । गते गताश्च परमे नरदेवमिवानुगाः ॥१४॥
जीवस्तत्प्रतिबिम्बं च सर्वभोगी हि कर्मणाम् । यथाऽर्कचन्द्रयोर्बिम्बं जलपूर्णघटेषु च ॥१५॥
बिम्बं घटेषु भग्नेषु प्रलीनं चन्द्रसूर्ययोः । तथा लयप्रसङ्गे स जीवो ब्रह्मणि लीयते ॥१६॥

नारद की बातें सुन कर पाँच मुख वाले भगवान् शिव ने हँस कर परब्रह्म का निरूपण करना आरम्भ किया ॥६॥

महादेव बोले—वत्स नारद ! तुमने जो निगूढ़ एवं परमोत्तम ज्ञान के विषय में पूछा है, वह वेदों और पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है ॥७॥ ब्रह्मन् ! मुने ! शिव, ब्रह्मा, विष्णु, शेष, धर्म और महान् विराट्—इन सब का हमने तथा श्रुतियों ने भी निरूपण किया है। वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ नारद ! जो सविशेष तथा प्रत्यक्ष दृश्य तत्त्व है, उसका हम लोगोंने वेद में निरूपण किया है ॥८-९॥

एक बार वैकुण्ठ में मेरे, ब्रह्मा के तथा धर्म के पूछने पर भगवान् विष्णु ने जो कुछ कहा था, वही तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! वह तत्त्वों का सारभूत, अज्ञानी-अन्धे के नेत्र और द्वैध भ्रम रूपी अंधकार का नाशक अत्यन्त प्रज्ज्वलित प्रदीप है ॥१०-११॥ सनातन परब्रह्म परमात्मस्वरूप है। वह समस्त देहों में स्थित और जीवों के कर्मों का साक्षी है ॥१२॥ (सभी जीवों के) पाँचों प्राण स्वयं विष्णु, मन प्रजापति ब्रह्मा, समस्त ज्ञानस्वरूप मैं (शिव) और ईश्वरी प्रकृति शक्ति है ॥१३॥ राजा के अनुचरों की भाँति हम सभी परमात्मा के अधीन हैं। शरीर में उसके स्थित रहने पर हम लोग स्थित रहते हैं और उस परम (महान्) के चले जाने पर चले जाते हैं ॥१४॥ जीव उसी परमात्मा का प्रतिबिम्ब है और कर्मों का भोग करता है। जैसे जलपूर्ण घट में सूर्य-चन्द्र का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है और घट के फूट जाने पर वह प्रतिबिम्ब चन्द्रमा और सूर्य में विलीन हो जाता है, उसी भाँति प्रलय के समय जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥१५-१६॥ वत्स ! (महाप्रलय में) इस संसार के नष्ट हो जाने पर एक वही परब्रह्म शेष रह जाता है

१क. ०वान्वक्तु० ।

एकमेव परं ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये। वयं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम् ॥१७॥
तच्च ज्योतिःस्वरूपं च मण्डलाकारमेव च। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ॥१८॥
आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम्। सुखदृश्यं यथा चन्द्रबिम्बं योगिभिरेव च ॥१९॥
वदन्ति योगिनस्तत्तु परं ब्रह्म सनातनम्। दिवानिशं च ध्यायन्ते सत्यं तत्सर्वमङ्गलम् ॥२०॥
निरीहं च निराकारं परमात्मानमीश्वरम्। स्वेच्छामयं स्वतन्त्रं च सर्वकारणकारणम् ॥२१॥
परमानन्दरूपं च परमानन्दकारणम्। परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥२२॥
तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी। यथाऽग्नौ दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्ये यथा मुने ॥२३॥
यथा दुग्धे च धावल्यं जले शैत्यं यथैव च। यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा ॥२४॥
तथा हि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा। सृष्टयुन्मुखेन तद्ब्रह्म चांशेन पुरुषः स्मृतः ॥२५॥
स एव सगुणो वत्स प्राकृतो विषयी स्मृतः। त्रिगुणा सा हि तत्रैव[1] परस्येच्छामयी स्मृता ॥२६॥
यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्तुं क्षमः सदा। तथा प्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं क्षमं मुने ॥२७॥
स्वर्णेन कुण्डलं कर्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा। तथा ब्रह्म तया सार्धं सृष्टिं कर्तुमिहेश्वरः (म्) ॥२८॥
कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या चैव सनातनी। न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णं वा नित्यमेव च ॥२९॥

और हम सब तथा यह चराचरमय सम्पूर्ण जगत् उसी में विलीन हो जाते हैं ॥१७॥ वह परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप मण्डलाकार और ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण है ॥१८॥ आकाश की भाँति विस्तृत, सर्वव्यापक, अनश्वर तथा योगियों को चन्द्रबिम्ब की भाँति सुखमय दिखायी देता है ॥१९॥ योगी लोग उसे सनातन परब्रह्म कहते हैं और दिन-रात उस सर्वमंगलमय सत्य स्वरूप का ध्यान करते रहते हैं ॥२०॥ वह निरीह (इच्छा-रहित), निराकार (रूपहीन), परमात्मा, ईश्वर, स्वेच्छामय, स्वतन्त्र एवं समस्त कारणों का कारण है ॥२१॥ परमानन्दरूप, परमानन्द का कारण, उत्तम प्रधान पुरुष, गुण (सत्त्व, रज, तम) से हीन और प्रकृति से परे है। प्रलय के समय उसीमें सर्वबीजस्वरूपिणी प्रकृति लीन होती है। ठीक उसी तरह जैसे अग्नि में उसकी दाहिका शक्ति, सूर्य में प्रभा, दुग्ध में धवलता और जल में शीतलता लीन रहती है। मुने! जैसे आकाश में शब्द और पृथ्वी में गंध सदा विद्यमान है उसी तरह निर्गुण ब्रह्म में निर्गुण प्रकृति सर्वदा स्थित है ॥२२-२४॥ वही ब्रह्म, सृष्टि के समय अंश से पुरुष रूप होता है। वत्स! उसी को सगुण, प्राकृत और विषयी कहा जाता है ॥२५॥ उसी में त्रिगुण रूप वाली परा प्रकृति भी छायामयी होकर रहती है ॥२६॥ मुने! जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी द्वारा घड़े बनाने में सदैव समर्थ रहता है उसी भाँति वह ब्रह्म प्रकृति द्वारा समस्त सृष्टि करने में समर्थ है ॥२७॥ जिस प्रकार सुनार सुवर्ण द्वारा कुण्डल आदि (भूषण) बनाने में सदैव समर्थ रहता है उसी भाँति वह ब्रह्म प्रकृति द्वारा सृष्टि करने में समर्थ है ॥२८॥ कुम्हार की रचनोपयोगी मिट्टी न नित्य और न सनातनी (सदैव रहने वाली) है। उसी प्रकार सुवर्णकार का रचनोपयोगी सुवर्ण नित्य और सनातन नहीं है ॥२९॥ किन्तु वह परब्रह्म और प्रकृति नित्य है, क्योंकि दोनों की प्रधानता समान

---

१ ख. परा छायाम०।

नित्यं तत्परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता। द्वयोः समं च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥३०॥
मृदं स्वर्णं समाहर्तुं कुलालस्वर्णकारकौ। न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥३१॥
तस्मात्तत्प्रकृतेर्ब्रह्म परमेव च नारद। इति केचिद्वदन्त्येवं द्वयोर्वै नित्यता ध्रुवम् ॥३२॥
केचिद्वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयं च प्रकृतिः पुमान्। ब्रह्मातिरिक्तप्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ॥३३॥
तद्ब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम्। तद्ब्रह्मलक्षणं ब्रह्मन्निदं किंचिच्छ्रुतौ श्रुतम् ॥३४॥
ब्रह्म चाऽऽत्मा च सर्वेषां निर्लिप्तं साक्षिरूपि च। सर्वव्यापी च सर्वादि लक्षणं च श्रुतौ श्रुतम् ॥३५॥
तद्ब्रह्म शक्तिः प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी। यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥३६॥
तेजोरूपं च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा। वैष्णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः ॥३७॥
तत्तेजः कस्य नाऽऽश्चर्यं ध्यायन्ते पुरुषं विना। कारणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्भुवि ॥३८॥
ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम्। स्वेच्छामयस्य पुंसश्च साकारस्याऽऽत्मनः सदा ॥३९॥
तत्तेजोमण्डलाकारे सूर्यकोटिसमप्रभे। नित्यं स्थलं च प्रच्छन्नं गोलोकाभिधमेव च ॥४०॥
लक्षकोट्या योजनानां चतुरस्रं मनोहरम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीभिश्चाऽऽवृतं सदा ॥४१॥
सुदृश्यं वर्तुलाकारं यथा चन्द्रस्य मण्डलम्। नानारत्नैश्च खचितं निराधारं तदिच्छया ॥४२॥
ऊर्ध्वं च नित्यं वैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम्। गोगोपगोपीसंयुक्तं कल्पवृक्षसमन्वितम् ॥४३॥

है, ऐसा कुछ लोगों का कहना है ॥३०॥ कुम्हार और सुनार स्वयं मिट्टी और सुवर्ण पैदा कर के लाने में समर्थ नहीं हैं तथा मिट्टी और सुवर्ण भी कुम्हार और सुनार को ले आने की शक्ति नहीं रखते। अतः मिट्टी और कुम्हार की घट में तथा सुवर्ण और सुनार की कुंडलमें समानरूप से प्रधानता है ॥३१॥ नारद! अतः प्रकृति से ब्रह्म श्रेष्ठ है। इस प्रकार कुछ लोग उन दोनों की निश्चित नित्यता बतलाते हैं ॥३२॥ कुछ लोग कहते हैं कि वही ब्रह्म प्रकृति (स्त्री) और पुरुष दोनों होता है। कुछ लोग प्रकृति को ब्रह्म से अतिरिक्त मानते हैं ॥३३॥ वह ब्रह्म, परमधाम, समस्त कारणों का कारण है। ब्रह्मन्! उस ब्रह्म का लक्षण श्रुति में कुछ इस प्रकार सुना गया है। ३४॥ वह ब्रह्म सभी का आत्मा, निर्लिप्त, साक्षिरूप, सर्वव्यापी एवं सब का आदिकारण है, वेद में ऐसा सुना है ॥३५॥ सर्वबीजस्वरूपिणी प्रकृति उस ब्रह्म की शक्ति है। क्योंकि प्रकृति के लक्षण में 'ब्रह्म शक्तिमान् है' ऐसा कहा गया है ॥३६॥ उस ब्रह्म के उस तेजोरूप का सभी योगी सदैव ध्यान करते हैं। किन्तु सूक्ष्म बुद्धि वाले मेरे भक्त वैष्णवगण ऐसा नहीं मानते ॥३७॥ बिना पुरुष के केवल उस तेज का ध्यान करना किसे आश्चर्य में नहीं डालता? पृथ्वी पर बिना कारण के कार्य का होना कहाँ सम्भव है? ॥३८॥ इसीलिए वैष्णवगण सदैव उसमें स्वेच्छामय पुरुष के मनोहर रूप का, जो परमात्मा का साकार रूप है, ध्यान किया करते हैं ॥३९॥ करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान जो मंडलाकार तेजःपुंज है, उसके भीतर नित्य धाम छिपा हुआ है, जिसका नाम गोलोक है ॥४०॥ वह मनोहर लोक चारों ओर से लक्षकोटि योजन विस्तृत है। सर्वश्रेष्ठ दिव्य रत्नों के सारतत्त्व से जिनका निर्माण हुआ है, ऐसे दिव्य भवनों तथा गोपाङ्गनाओं से वह लोक भरा हुआ है। ॥४१॥ उसे सुखपूर्वक देखा जा सकता है। चन्द्रमंडल के समान ही वह गोलाकार है। रत्नेद्रसार से निर्मित वह धाम परमात्मा की इच्छा के अनुसार बिना किसी आधार के ही स्थित है ॥४२॥ मुने! इस प्रकार वह गोलोक उसी नित्य वैकुण्ठ धाम से पचास करोड़ योजन ऊपर है। वह

कामधेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम्। वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने ॥४४॥
शतशृंङ्गैः शातकुम्भैः सुदीप्तं श्रीमदीप्सितम्। लक्षकोटचा परिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः ॥४५॥
शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम्। रत्नप्राकारपरिखाविचित्रेण विराजितम् ॥४६॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्षमन्दिरसुन्दरम्। आश्रमं चतुरस्रं च चन्द्रबिम्बाकृतं वरम् ॥४७॥
गोलोकमध्यदेशस्थमतीव सुमनोहरम्। [1]प्राकारपरिखायुक्तं पारिजातवनान्वितम् ॥४८॥
कौस्तुभेन्द्रेण मणिना राजितं परमोज्ज्वलम्। हीरसारसुसंक्लृप्तसोपानैश्चातिसुन्दरैः ॥४९॥
मणीन्द्रसाररचितैः कपाटैर्दर्पणान्वितैः। नानाचित्रविचित्राढचैराश्रमं च सुसंस्कृतम् ॥५०॥
षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं [2]रत्नदीपकैः। रत्नसिंहासने रम्ये महार्घमणिनिर्मिते ॥५१॥
नानाचित्रविचित्राढचे वसन्तं परमीश्वरम्। नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् ॥५२॥
[3]शरन्मध्यान्हामार्तण्डप्रभामोचकलोचनम्। [4]शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशुभदीप्तिमदाननम् ॥५३॥

गौ, गोप, गोपी से युक्त, कल्पवृक्ष सहित, कामधेनुओं से भरा हुआ, रासमण्डल से सुशोभित, वृन्दावन नामक वन से आच्छन्न और विरजा नदी से आवेष्टित है ॥४३-४४॥ वहाँ सैकड़ों स्वर्णमय शिखरों से सुशोभित गिरिराज विराजमान है। सुवर्ण-निर्मित लक्ष कोटि मनोहर आश्रम हैं, जिनसे वह अभीष्ट धाम अत्यन्त दीप्तिमान् एवं श्रीसम्पन्न दिखाई देता है। उन सबके मध्य भाग में एक परम मनोहर आश्रम है, जो अकेला ही सौ मंदिरों से युक्त है। वह रत्नों के बने विचित्र परकोटों तथा खाइयों से सुशोभित हैं। उसका अमूल्य रत्नों से निर्माण हुआ है। वह लाखों मन्दिर के समान सुन्दर है, वह आश्रम चौकोर है। चन्द्रबिम्ब के समान उसका आकार है। वह गोलोक के मध्य देश में अवस्थित एवं अत्यन्त सुन्दर है। वह परकोटों तथा खाइयों से घिरा हुआ तथा पारिजात वनों से सुशोभित है। उस आश्रम के भवनों में जो कलश लगे हैं, उनका निर्माण रत्नराज कौस्तुभ मणि से हुआ है। इसलिए उत्तम ज्योतिः पुंज से जाज्वल्यमान रहते हैं। हीरा के सारभाग से बनीं उनकी सीढ़ियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं ॥४५-४९॥ मणियों के तत्त्व भाग के बने किवाड़ों में दर्पण जड़े हुए हैं। अनेक भाँति के चित्रविचित्र उपकरणों से वह आश्रम अत्यन्त सुसज्जित है उसमें सोलह दरवाजे हैं तथा वह आश्रम रत्नों के दीपकों से अत्यन्त प्रदीप्त हैं। उस आश्रम में अत्यन्त अमूल्य मणियों का बना एक रत्नखचित रमणीय सिंहासन है। उस पर सर्वेश्वर श्रीकृष्ण बैठे हुए हैं। उनकी अंग-कान्ति नवीन मेघमाला के समान श्याम है। वे किशोरावस्था के बालक हैं ॥५०-५२॥ उनकी आँखों से शरत् ऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान प्रभा निकलती रहती है और उनका मुख शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति शुभ किरणों से युक्त है। उनका सौन्दर्य कोटि कन्दर्पों

---

१ इदं श्लोकद्वयं ख. पुस्तके नास्ति। २क. ०कैः। तत्र सिं०। ३क. ०हनराजीवप्र०। ४क. ०न्दुशोभाच्छादनमान०।

कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितमन्मथम्। कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टं पुष्टं श्रीयुक्तविग्रहम्॥५४॥
सस्मितं मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम्[1]। परमोत्तमपीतांशुकयुगेन समुज्ज्वलम्॥५५॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम्। आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम्॥५६॥
त्रिभङ्गभङ्गचसंयुक्तं[2] मणिमाणिक्यभूषितम्। मयूरपुच्छचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्॥५७॥
रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम्॥५८॥
[3]मुक्तापङ्क्तिसदृक्षामदशनं सुमनोहरम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठं च नासिकोन्नतिशोभनम्॥५९॥
वीक्षितं गोपिकाभिश्च वेष्टिताभिः समन्ततः। स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम्॥६०॥
भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्मितैर्भूषणैः परम्। सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः॥६१॥
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुदा। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम्॥६२॥
रासेश्वरं सुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम्। एवं रूपमरूपं तं मुने ध्यायन्ति वैष्णवाः॥६३॥
सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम्। अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम्॥६४॥
स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृतेः परम्। सर्वाधारं[4] सर्वबीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च॥६५॥

की लावण्यलीला को तिरस्कृत कर रहा है। उनका पुष्ट श्रीविग्रह करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा से सेवित है। उनके मुख पर मुसकराहट खेलती रहती है। उनके हाथ में मुरली शोभा पाती है। उनकी मनोहर छवि अत्यन्त प्रशंसनीय है। वे परम मंगलमय हैं। अग्नि में तपाकर शुद्ध किए गए सुवर्ण के समान रंग वाले दो पीताम्बर धारण करने से उनका श्रीविग्रह परम उज्जवल प्रतीत होता है॥५३-५५॥ उनके सम्पूर्ण अंग चन्दन-चर्चित, कौस्तुभमणि से सुशोभित तथा जानु (घुटनों) तक लटकती हुई मालतीमाला और वनमाला से विभूषित हैं॥५६॥ त्रिभंगी छवि से युक्त और मणियों से अलंकृत हैं। मोरपंख का मुकुट धारण करते हैं। उत्तम रत्नमय मुकुट से उनका मस्तक जगमगाता रहता है। रत्नों के बाजूबन्द, कंगन और मंजीर से उनके हाथ-पैर सुशोभित हैं। उनके गंडस्थल रत्नमय युगल कुंडल से सुशोभित हैं॥५७-५८॥ मोतियों की पंक्ति के समान कान्तिपूर्ण उनके दाँत अत्यन्त मनोहर हैं। पके हुए बिम्बफल के समान उनके ओठ हैं। उनकी उन्नत नासिका अत्यन्त सुन्दर है। चारों ओर से घेरकर मंद मुसकान करती हुई गोपिकाएँ उन्हे सदा सादर निहारती रहती हैं। वे गोपियाँ स्थिर यौवन से युक्त, मंद मुसकान से सुशोभित तथा उत्तम रत्नों के बने हुए आभूषणों से विभूषित हैं॥५९-६०½॥ ऐसे उन परब्रह्म की मुनीन्द्र, सुरेन्द्र, मुनि, मानवेन्द्र तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं अनन्त धार्मिकजन सदा वंदना किया करते हैं। वे भक्तों के प्रिय, भक्तों के नाथ और भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले हैं॥६१-६२॥ मुने! इस प्रकार उस रासेश्वर, अत्यन्त रसिक, राधा जी के वक्षःस्थल पर विराजमान निराकार परमात्मा का वैष्णव गण सदैव ध्यान करते हैं॥६३॥ वही परमात्मा, ईश्वर हम लोगों के ध्येय हैं, उन्हीं को अविनाशी, परब्रह्म एवं सनातन भगवान् कहा गया है॥६४॥ वे स्वेच्छामय

१क. °म्। वह्निसंस्कारपी० २क. क्तं मुक्तामा०। ३क. ङ्क्तिविनिवेद्यद० ४क. सर्वसारं स०।

सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरं परम्। स एव भगवानादिर्गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥६६॥
गोपवेषश्च गोपालैः पार्षदैः परिवेष्टितः। परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णो राधिकेश्वरः ॥६७॥
सर्वान्तरात्मा सर्वत्र प्रत्यक्षः सर्वगः स्मृतः। कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चाऽऽत्मवाचकः ॥६८॥
सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्तितः। कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चाऽऽदिवाचकः ॥६९॥
सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्तितः। स एवांशेन भगवान्वैकुण्ठे च चतुर्भुजः ॥७०॥
चतुर्भुजैः पार्षदैस्तैरावृतः कमलापतिः। स एव कलया विष्णुः पाता च जगतां प्रभुः ॥७१॥
श्वेतद्वीपे सिन्धुकन्यापतिरेव चतुर्भुजः। एतत्ते कथितं सर्वं [1]परब्रह्मस्वरूपकम् ॥७२॥
अस्माकं चिन्तनीयं च सेव्यं वन्दितमीप्सितम्। इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च शौनक ॥७३॥
गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टुवे तं च नारदः। मुनिस्तोत्रेण संतुष्टो भगवानादिरच्युतः ॥७४॥
ज्ञानं मृत्युंजयस्तस्मै प्रददौ वरमीप्सितम्। मुनीन्द्रस्तं संप्रणम्य प्रहृष्टवदनेक्षणः ॥७५॥
तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम् ॥७६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते म० ब्र० सौ० ब्रह्मस्वरूपवैकुण्ठादिवर्णनं
नारदप्रस्थानं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

निर्गुण, निरीह, प्रकृति से परे, समस्त का आधार, सर्वबीज, सर्वज्ञ, सब कुछ, सर्वेश्वर, सब के पूज्य, समस्त सिद्धियों के प्रदाता हैं। वही एकमात्र भगवान् हैं, जो गोलोक में द्विभुज होकर गोपवेश में स्वयं रहते हैं। गोपाल पार्षदों से घिरे हुए वे परिपूर्णतम, श्रीकृष्ण, श्रीमान् राधिकेश्वर, सब के अन्तरात्मा, सब स्थानों में प्रत्यक्ष होने योग्य और सर्वगामी हैं। (कृष्ण शब्द में) कृष् शब्द का समस्त और नकार का आत्मा अर्थ है इसीलिए वे सर्वात्मा परब्रह्म कृष्ण नाम से कहे जाते हैं ॥६५-६८½॥ कृष् का अर्थ आदि और नकार का अर्थ आत्मा है। इसलिए वे सर्वव्यापी परमेश्वर सब के आदिपुरुष हैं। वही भगवान् अपने अंश से चतुर्भुज होकर वैकुण्ठ में चार भुजाओं वाले पार्षदों समेत लक्ष्मीपति रूप से निवास करते हैं। वही अपनी कला (अंश) मात्र से विष्णु होकर समस्त जगत् की रक्षा करते हैं और श्वेतद्वीप में सिन्धुकन्या लक्ष्मी के पति होकर चार भुजाओं से स्थित हैं। इस प्रकार मैंने परब्रह्म का स्वरूप सभी प्रकार से तुम्हें बता दिया, जो हम लोगों के चिन्तनीय, सुसेवा के योग्य और प्रिय एवं स्मरणीय हैं। शौनक! इतना कह कर शंकर चुप हो गए ॥६९-७३॥ तब नारद ने गन्धर्वराज द्वारा रचे गए स्तोत्र से उनकी पुनः स्तुति की। उपरान्त आदि भगवान् अच्युत मृत्युंजय (शिव) ने मुनि के उस स्तोत्र से प्रसन्न होकर उन्हें मनोवांछित उत्तम ज्ञान प्रदान किया। और मुनीन्द्र नारद ने अपने प्रसन्न मुख तथा नेत्र द्वारा अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए उन्हें प्रणाम किया। पश्चात् उनकी आज्ञा से नारद उस पुण्य रूप नारायणाश्रम की ओर चले गए ॥७४-७६॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुरण के ब्रह्मखण्ड में ब्रह्मस्वरूप एवं वैकुण्ठादिवर्णन समेत
नारदप्रस्थान नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

१क. ०ह्म निरूपणम्।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

सौतिरुवाच

ददर्शाऽऽश्रममाश्चर्यं देवर्षिर्नारदस्तथा। ऋषेर्नारायणस्यैव बदरीवनसंयुतम् ॥१॥
नानावृक्षलताकीर्णं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम्। शरभेन्द्रैः केसरीन्द्रैर्व्याघ्रौघैः परिवेष्टितम् ॥२॥
ऋषीन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयविवर्जितम्। महारण्यमगम्यं च स्वर्गादपि मनोहरम् ॥३॥
([1]त्रिषष्टिकोटिसिद्धौघैरावृतं सूर्यवर्चसम्। ऋषीन्द्राणां च पञ्चाशत्कोटिभिश्चान्वितं मुदा ॥
विद्याधराणां नृत्यं तत्पश्यन्तं सस्मितं द्विज। गन्धर्वकृष्णसंगीतं श्रुतवन्तं मनोहरम् ॥)
सिद्धेन्द्राणां मुनीन्द्राणामाश्रमाणां त्रिकोटिभिः। आवृतं चन्दनारण्यैः पारिजातवनान्वितम् ॥४॥
ददर्श तमृषीन्द्रं च सभामध्ये मनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं च वसन्तं योगिनां गुरुम् ॥५॥
जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्। प्रणनाम च तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक ॥६॥
उत्थाय सहसाऽऽलिङ्ग्य युयुजे परमाशिषम्। पप्रच्छ कुशलं स्नेहाच्चकारातिथिपूजनम् ॥७॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारदम्। निवसन्नासने रम्ये वर्त्मश्रमविवर्जितः ॥८॥

अध्याय २९

बदरिकाश्रम में नारायण से नारद का प्रश्न

सौति बोले—देवर्षि नारद ने ऋषि नारायण के आश्चर्यमय आश्रम को देखा, जो बदरी (बेर) के वन से युक्त, अनेक भाँति के वृक्ष एवं फलों से व्याप्त, कोकिल की मधुर कूक से कूजित, मृगों, सिंहों और व्याघ्र-समूहों से घिरा हुआ था ॥१-२॥ किन्तु ऋषीन्द्र नारायण के प्रभाव से वह स्थान हिंसा और भय से रहित था। इस प्रकार यह अगम्य महावन स्वर्ग से भी मनोहर दिखायी देता था ॥३॥ वह तिरसठ करोड़ सिद्धों तथा पचास करोड़ मुनीन्द्रों से सुसेवित था ॥४॥ द्विज ! विद्याधरों के नृत्य को देखते हुए तथा मुसकराते हुए ऋषीन्द्र नारायण को देखा, जो गन्धर्व-कृष्ण के संगीत को सुनने वाले तथा मनोहर थे। वहाँ तीन करोड़ सिद्धेन्द्रों एवं मुनीन्द्रों के आश्रम थे। वह चन्दन तथा पारिजात के वनों से घिरा हुआ था। इस प्रकार उस आश्रम में सभा के मध्य एक रत्नसिंहासन पर विराजमान उन ऋषीन्द्र को देखा, जिनका रूप मनोहर था और जो योगियों के गुरु थे। शौनक ! श्रीकृष्णस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का जप करते हुए नारायण मुनि को देखकर ब्रह्मपुत्र नारद ने उन्हें प्रणाम किया ॥५-६॥ अनन्तर ऋषि ने उठ कर सहसा उनका आलिंगन किया और उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। पुनः स्नेहवश कुशल पूछ कर उनका अतिथि-सत्कार किया ॥७॥ उन्होंने उस रमणीक रत्नसिंहासन पर नारद को भी बैठाया, जिस पर बैठने से नारद का मार्गश्रम

---

[1] इदं श्लोकद्वयं ख. पुस्तके नास्ति।

उवाच तमृषिश्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम्। अधीत्य वेदान्सर्वांश्च पितुः स्थाने सुदुर्गमान्॥९॥
ज्ञानं संप्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रं वै शंकराद्विभो। मनो मे नहि तृप्नोति दुर्निवारं च चञ्चलम्॥१०॥
दृष्टं मया त्वत्पदाब्जं मनसा प्रेरितेन च। किंचिज्ज्ञानविशेषं च लब्धुमिच्छामि सांप्रतम्॥११॥
यत्र कृष्णगुणाख्यानं जन्ममृत्युजरापहम् ॥१२।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरेन्द्राश्च सुरा विभो। कं चिन्तयन्ति मुनयो मनवश्च विचक्षणाः॥१३॥
कस्मात्सृष्टिश्च भवति कुत्र वा संप्रलीयते। को वा सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वकारणकारकः॥१४॥
तस्येश्वरस्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते। विचार्य मनसा सर्वं तद्भवान्वक्तुमर्हति॥१५॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भगवानृषिः। कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनपावनीम्॥१६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते सौ० नारायणं प्रति नारदप्रश्नो
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

दूर हो गया॥८॥ पश्चात् नारद ने ऋषिश्रेष्ठ सनातन भगवान् से कहा—विभो! पिताजी से उन अत्यन्त दुर्गम वेदों का अध्ययन तथा योगीन्द्र शंकर जी से ज्ञान और मन्त्र प्राप्त कर लेने पर भी मेरे मन को तृप्ति नहीं हो रही है, क्योंकि यह मन अत्यन्त दुर्निवार और चंचल है॥९-१०॥ इसीलिए मन से प्रेरित होकर मैंने आपके चरणकमल का दर्शन किया है। अब मुझे कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो रही है, जिसमें जन्म, मृत्यु एवं जरा के विनाशक भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुवर्णन किया गया हो॥११-१२॥ विभो! ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि सुरेन्द्र, देवगण तथा बुद्धिमान् मुनिगण तथा मनुगण किसका चिन्तन करते हैं?॥१३॥ सृष्टि किससे उत्पन्न होकर किसमें विलीन हो जाती है? कौन सब का ईश्वर, विष्णु एवं समस्त कारणों का कारण है? जगत्पते! उस ईश्वर का रूप और कर्म मन से विचार कर आप मुझे बताने की कृपा करें॥१४-१५॥ नारद की बातें सुन कर भगवान् ऋषि ने हँसकर त्रिभुवनपावनी पुण्य कथा को कहना आरम्भ किया॥१६॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के ब्रह्मखण्ड में नारद-प्रश्न-नामक
उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

लम्बोदरो हरिरुमापतिरादिशेषब्रह्मादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः
वाणीशिवात्रिपथगाकमलादिकाश्च संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥१॥
संसारसागरमतीव गभीरघोरं दावाग्निसर्पपरिवेष्टितचेष्टिताङ्गम् ।
संलङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति यो हि दास्यं संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥२॥
गोवर्धनोद्धरणकीर्तिरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाग्रत एव चाऽऽर्द्रा ।
विश्वानि लोमविवरेषु बिभर्तुरादेः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥३॥
वेदाङ्गवेदमुखनिःसृतकीर्तिरंशैर्वेदाङ्गवेदजनकस्य हरेर्विधातुः ।
जन्मान्तकादिभयशोकविदीर्णदेहः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥४॥
गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य [1]रसिकारमणस्य पुंसः ।
वृन्दावने विहरतो व्रजवेषविष्णोः संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥५॥
चक्षुर्निमेषपतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितुं भुवि कः समर्थः ।

अध्याय ३०

परमात्मा श्रीकृष्ण तथा प्रकृति की महिमा का वर्णन

श्रीनारायण बोले—गणेश, विष्णु, शिव, आदि शेष तथा ब्रह्मा आदि देवगण, मनु, मुनीन्द्रवृन्द, सरस्वती, गौरी, गंगा और कमला आदि देवियाँ भी जिन भगवान् के चरण-कमल का चिन्तन करती हैं, उन भगवान् का चिन्तन करना सबका कर्तव्य है॥१॥ जो गम्भीर और घोर इस संसार-सागर को, जिसका अंग दावाग्निरूपी सर्पों से घिरा है, पार करना चाहता है, वह दास्य भाव से भगवान् के चरण-कमल की चिन्तना करे॥२॥ गोवर्द्धन का उद्धार करने वाले भगवान् ने इस दीनमुखी पृथिवी को अपने दाँतों के अग्र भाग पर रख कर इसका उद्धार किया था और (जीवों के) भरण-पोषण करने वाले उन आदि देव के लोमविवरों में अनेक विश्व निहित हैं। ऐसे भगवान् के चरण-कमल का स्मरण अवश्य करना चाहिए॥३॥ (शिक्षा, कल्प आदि) छहों वेदांग और वेदगण अपने मुख से जिसकी कीर्ति का सदैव वर्णन करते हैं तथा जो अपने अंश से वेदांग-सहित वेद के उत्पादक हैं, ऐसे विधाता भगवान् हरि के चरण-कमलों का स्मरण वह व्यक्ति करे जिसका शरीर जन्म-मरण आदि के भय और शोक से विदीर्ण हो गया है ॥४॥ जो गोपियों के मुखकमल के भ्रमर हैं और वृन्दावन में विहार करते हैं, उन व्रजवेषधारी, विष्णु रूप परम पुरुष, रसिकरमण, रासेश्वर श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का चिन्तन करना चाहिए। जिनके नेत्रों की पलक गिरने पर जगद्विधाता

१क. ०काभरण०

त्वं चापि नारदमुने परमादरेण संचिन्तनं कुरु हरेश्चरणारविन्दम् ॥६॥
यूयं वयं तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः ।
कलाविशेषा भवपाद्ममुख्या महान्विराड् यस्य कलाविशेषः ॥७॥
सहस्रशीर्षा शिरसः प्रदेशे बिभर्ति सिद्धार्थसमं च विश्वम् ।
कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः ॥८॥
गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतौ पुराणे नहि किंचन स्फुटम् ।
न पाद्ममुख्याः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज पाद्मपुत्र ॥९॥
विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः ।
तेषां च संख्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज ॥१०॥
करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसूम् ।
ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति ॥११॥
ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यया च सृष्टिं कुरुते सनातनः[1] ।
स्त्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिताः ॥१२॥
नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च ।

ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाती है उनके कर्म का वर्णन करने में भूतल पर कौन समर्थ है ? इसलिए नारद मुने ! तुम भी परम आदर से उसी भगवान् के चरण-कमल का चिन्तन करो ॥६॥ तुम लोग और हम लोग सभी उन भगवान् की कला के अंशमात्र हैं। उसी प्रकार मनुगण तथा संसारपारगामी मुख्य मुनिगण भी उनकी कला के कलांश ही हैं। महादेव और ब्रह्मा भी कलाविशेष हैं और महान् विराट् पुरुष भी उनकी विशिष्ट कलामात्र हैं ॥७॥ सहस्र सिरों वाले शेषनाग सम्पूर्ण विश्व को अपने मस्तक पर सरसों के एक दाने के समान धारण करते हैं, परन्तु कूर्म के पृष्ठ भाग में वे शेषनाग ऐसे जान पड़ते हैं मानो हाथी के ऊपर मच्छर बैठा हो। वे भगवान् कूर्म श्रीकृष्ण की कला के अंशमात्र हैं ॥८॥ अतः उस व्यापक एवं गोलोक नाथ के निर्मल यश का वर्णन वेद एवं पुराण में किंचिन्मात्र भी प्रकट नहीं हुआ। ब्रह्मा आदि मुख्य देवगण भी उसके वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सके। इसलिए उसी सर्वेश्वर एवं मुख्य देव की आराधना करो ॥९॥ उस विश्वधाम भगवान् के सभी विश्वों में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश निरन्तर स्थित रहते हैं, उनकी संख्याएँ वेद तथा देवगण नहीं जानते हैं। अतः उस परमेश्वर की सेवा करो ॥१०॥ वही परमेश्वर ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं और वे ब्रह्मा जगत् को उत्पन्न करनेवाली उस नित्य प्रकृति की रचना करके सृष्टि करते हैं। इसीलिए ब्रह्मा आदि देवगण और प्राकृतिक मनुष्य सभी, उस भक्तिप्रद की प्रकृति की आराधना करते हैं ॥११॥ वह ब्रह्मस्वरूपा प्रकृति ब्रह्म से भिन्न नहीं है। वे सनातन भगवान् उस प्रकृति द्वारा सृष्टि करते हैं। उसी प्रकृति की कला से संसार की सारी स्त्रियाँ प्रकट हुई हैं। प्रकृति ही माया है। उससे सब विमोहित हैं ॥१२॥ वह सनातनी नारायणी,

---

१ख. ०नः। श्रिव०।

आत्मेश्वरश्चापि यया च शक्तिमांस्तया विना स्रष्टुमशक्त एव ॥१३॥
गत्वा विवाहं कुरु वत्स सांप्रतं कर्तुं प्रयुक्तश्च पितुर्निदेशः ।
गुरोर्निदेशप्रतिपालको भवेः सर्वत्र पूज्यो विजयी च संततम् ॥१४॥
स्वपत्नीं पूजयेद्यो हि वस्त्रालंकारचन्दनैः। प्रकृतिस्तस्य संतुष्टा यथा कृष्णो द्विजार्चने ॥१५॥
सा च योषित्स्वरूपा च प्रतिविश्वेषु मायया। योषितामपमानेन पराभूता च सा भवेत् ॥१६॥
दिव्या स्त्री पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमङ्गलदायिनी ॥१७॥
मूलप्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी। सृष्टौ पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी ॥१८॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः। सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा परिकीर्तिता ॥१९॥
नारायणप्रिया लक्ष्मीः सर्वसंपत्स्वरूपिणी। वागधिष्ठातृदेवी या सा च पूज्या सरस्वती ॥२०॥
सावित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया। शंकरस्य प्रिया दुर्गा यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ॥२१॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे भगवत्स्तुति-तत्स्वरूपमायास्वरूपवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

परमात्मा पुरुष की परमा शक्ति है, जिससे वे आत्मेश्वर शक्तिमान् कहे जाते हैं, और उस (माया) के बिना वे सृष्टि करने में असमर्थ भी रहते हैं ॥१३॥ वत्स ! इस समय तुम पिता की आज्ञा का पालन रूप विवाह अवश्य करो, क्योंकि गुरु की आज्ञा का पालन करने से तुम सर्वत्र सदैव पूज्य और विजयी बने रहोगे ॥१४॥ क्योंकि जो अपनी पत्नी का वस्त्र आभूषण और चन्दनों द्वारा पूजा (सम्मान) करता है, उस पर वह प्रकृति उसी तरह परम प्रसन्न होती है जैसे ब्राह्मण की अर्चना करने पर भगवान् कृष्ण ॥१५॥ इस प्रकार प्रत्येक विश्व में वह माया स्त्री रूप से विद्यमान है। इसलिए स्त्री का अपमान करने से वह अपमानित होती है ॥१६॥ इसलिए पतिपुत्रवाली दिव्य स्त्री की जिसने पूजा की उसने मानों सर्वमंगलप्रदा प्रकृति की पूजा की है ॥१७॥ पूर्णब्रह्मस्वरूप वाली वह मूल प्रकृति एक ही है किन्तु वह विष्णु की सनातनी माया सृष्टि के समय पाँच रूपों में प्रकट होती हैं ॥१८॥ इस भाँति भगवान् कृष्ण के प्राणों की उस अधिष्ठात्री देवी को, जो समस्त प्रकृतियों में उन्हें सबसे अधिक प्रिय हैं, 'राधा' कहा गया है ॥१९॥ समस्त सम्पत्तियों का रूप धारण करने वाली लक्ष्मी, जो नारायण की प्रिया हैं , दूसरी प्रकृति हैं एवं वाणी की अधिष्ठात्री देवी पूज्या सरस्वती तीसरी प्रकृति हैं ॥२०॥ ब्रह्मा की प्रिया वेदमाता सावित्री चौथी और शंकर की प्रिया दुर्गा, जिनके पुत्र गणेश हैं; पांचवीं प्रकृति हैं ॥२१॥

ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के ब्रह्मखण्ड में भगवत्स्तुति, तत्स्वरूप एवं मायास्वरूप वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

ब्रह्मखंड समाप्त।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

तत्र द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

नारद उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती। सावित्री वै सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥१॥
आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनां वरा। किंवा तल्लक्षणं ब्रूहि साऽभवत्पञ्चधा कथम् ॥२॥
सर्वासां चरितं पूजाविधानं[1] कथमीप्सितम्। अवतारं कुत्र कस्यास्तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत्। किंचित्तथाऽपि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥४॥
प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः। सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥५॥
गुणे प्रकृष्टसत्त्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ। मध्यमे कृश्च रजसि तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥६॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता। प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥७॥

अध्याय १

प्रकृति तथा उसके अंश आदि का वर्णन

नारद बोले—गणेश की माता दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—ये पाँच देवियाँ प्रकृति कहलाती हैं। इन्हीं पर सृष्टि निर्भर है ॥१॥ ज्ञानियों में श्रेष्ठ वह प्रकृति किसके द्वारा उत्पन्न होती है? उसका रूप क्या है? उसका लक्षण क्या है? और वह पाँच प्रकार की कैसे होती है? इसे बताने की कृपा करें ॥२॥ तथा उन सब का चरित और पूजा का विधान, उनकी इच्छा और किसका कहाँ अवतार हुआ है यह भी बताने की कृपा करें ॥३॥

नारायण बोले—वत्स! प्रकृति का लक्षण कहने में कौन समर्थ हो सकता है। तो भी जो कुछ धर्म के मुख से मैंने सुना है उसे तुम्हें बता रहा हूँ ॥४॥ (प्रकृति शब्द में) प्र का अर्थ है 'प्रकृष्ट' और कृति का अर्थ है 'सृष्टि'। अतः सृष्टि करने में प्रकृष्ट गुण सम्पन्न होने वाली देवी को 'प्रकृति' कहा गया है ॥५॥ वेद में प्रशब्दका प्रकृष्ट सत्त्व-गुण अर्थ बताया गया है, कृ शब्द का मध्यम रजोगुण और ति शब्द का तमोगुण अर्थ कहा है ॥६॥ इस प्रकार त्रिगुण स्वरूप वाली सर्वशक्तिमती को सृष्टि में प्रधान होने के नाते 'प्रकृति' कहा गया है ॥७॥ प्रथम अर्थ में प्रशब्द

---

१ क ०नं गुणमौ०।

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिः स्यात्सृष्टिवाचकः। सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥८॥
योगेनाऽऽत्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः। पुमांश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिः स्मृतः ॥९॥
सा च ब्रह्मस्वरूपा स्यान्माया नित्या सनातनी। यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाऽग्नौ दाहिका स्मृता ॥१०॥
अत एव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते। सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्पश्यति नारद ॥११॥
स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया। साऽऽविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥१२॥
तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः। अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥१३॥
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया। नारायणी विष्णुमाया[1] पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥१४॥
ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः[2] पूजिता सदा। सर्वाधिष्ठातृदेवी सा ब्रह्मरूपा सनातनी ॥१५॥
यशोमङ्गलधर्मश्रीसत्यपुण्यप्रदायिनी[3]। मोक्षहर्षप्रदात्रीयं शोकदुःखार्तिनाशिनी ॥१६॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा। तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता ॥१७॥
[4]सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम्। सिद्धेश्वरी सिद्धरूपा सिद्धिदा सिद्धिदेश्वरी ॥१८॥

और सृष्टि अर्थ में कृति शब्द का प्रयोग होता है। अतः सृष्टि की आदि देवी को 'प्रकृति' कहते हैं॥८॥ सृष्टि विधान काल में वह परब्रह्म योग द्वारा दो रूपों में प्रकट होते हैं। उनके दाहिने अंग से उत्पन्न होने वाले को 'पुरुष' और बाँयें अंग से उत्पन्न होने वाली को 'प्रकृति' कहते हैं॥९॥ वह ब्रह्मस्वरूपा माया जो नित्य और सनातनी' है, वह अग्नि में दाहिका शक्ति की भाँति आत्मा की शक्तिरूप है॥१०॥ नारद! इसीलिए योगीन्द्र लोग स्त्री-पुरुष का भेद नहीं मानते हैं। वे सबको निरन्तर ब्रह्ममय देखते हैं॥११॥ ब्रह्मन्! वह ईश्वरी मूल प्रकृति स्वेच्छामय भगवान् श्रीकृष्ण की सृष्टि करने वाली इच्छा द्वारा सहसा प्रकट हुई है॥१२॥ अतः उनकी आज्ञा से सृष्टि-कर्म में वह पाँच प्रकार का रूप धारण करती है, अथवा भक्तों के ऊपर कृपा करने के लिए या भक्तों के अनुरोध से भगवती प्रकृति विविध रूप धारण करती है॥१३॥ गणेश की माता दुर्गा, शिव (कल्याण) रूपा और शिव की प्रिया हैं। उस पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी, नारायणी, विष्णु की माया का ब्रह्मादि देवगण, मुनिगण और मनुगण सदैव पूजन करते रहते हैं, वह सब की अधिष्ठात्री देवी एवं सनातनी ब्रह्मरूपा है। वह यश, मङ्गल, धर्म, श्री, सत्य, पुण्य, मोक्ष एवं हर्ष प्रदान करने वाली शोक-दुःख का नाश करने वाली है॥१४-१६॥ शरण में आये हुए दीनों की रक्षा में सदा संलग्न रहती है। वह परम तेजःस्वरूपा है। उसे तेज की अधिष्ठात्री देवी कहा जाता है॥१७॥ वह सर्वशक्तिस्वरूपा है तथा शंकर को नित्य शक्ति प्रदान करती है। वह सिद्धेश्वरी, सिद्धिरूपा, सिद्धि देने वाली और सिद्धि देने वाले की अधीश्वरी है॥१८॥ बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति

---

१ क. ०ष्णुरूपा पू०। २ क. ०र्महद्भिः पू०। ३ क. ०नी। सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुर्गना०। ४ क. वैमन्त्रस्वरूपा च शक्तिबीजस्य साम्प्रतम्।

बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः। जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्भ्रान्तिश्च चेतना॥१९॥
तुष्टिः पुष्टिस्तथा[1] लक्ष्मीर्वृत्तिर्माता तथैव च। सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥२०॥
उक्तः श्रुतौ[2] श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथाऽऽगमम्। गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्ताया अपरां च निशामय॥२१॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः। सर्वसंपत्स्वरूपा या तदधिष्ठातृदेवता॥२२॥
कान्ता दान्ताऽतिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला। लोभान्मोहात्कामरोषान्मदाहंकारतस्तथा॥२३॥
त्यक्ताऽनुरक्ता पत्युश्च सर्वाद्या च पतिव्रता। प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा॥२४॥
सर्वसस्यात्मिका सर्वजीवनोपायरूपिणी। महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवापरायणा॥२५॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु। गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा॥२६॥
सर्वेषु प्राणिद्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा। प्रीतिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च॥२७॥
वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहङ्करी[3]। दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकारिका॥२८॥
चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च। जगज्जीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने॥२९॥
शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसंमता। सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तो निशामय॥३०॥

शान्ति, कान्ति, भ्रान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, वृत्ति तथा माता नाम से प्रसिद्ध देवियाँ परमात्मा कृष्ण की सर्वशक्ति स्वरूपा प्रकृति हैं॥१९-२०॥ श्रुति में इनके सुविख्यात गुण का अत्यन्त संक्षेप से वर्णन किया गया है, जैसा कि आगमों में उपलब्ध होता है। ये अनन्ता हैं। अतएव इनमें गुण भी अनन्त हैं। अब इनके दूसरे रूप का वर्णन सुनो॥२१॥

परमात्मा विष्णु की शक्ति पद्मा शुद्ध सत्त्व स्वरूपा, समस्त सम्पत्ति स्वरूपा तथा सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥२२॥ वह परम सुन्दरी, अनुपम संयमरूपा, अत्यन्त शान्तरूपा, सुशीला और सर्वमंगलमयी है। वह लोभ, मोह, काम, रोष, मद और अहंकार आदि दुर्गुणों से रहित है। भक्तों पर अनुग्रह करना तथा अपने स्वामी श्रीहरि से प्रेम करना उनका स्वभाव है। वह सबकी आदि कारण और पतिव्रता हैं। भगवान् की प्रेमपात्री, प्रियंवदा एवं प्राणतुल्य हैं॥२३-२४॥ समस्त अन्नमयी, सबकी जीवन-रक्षा स्वरूप वह महालक्ष्मी वैकुण्ठ में पति-सेवापरायण रहती हैं॥२५॥ वही स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी, राजाओं की राजलक्ष्मी और गृहों में गृहस्थ मनुष्यों की गृहलक्ष्मी हैं॥२६॥ वह सभी प्राणियों और जड़ पदार्थों की शोभा, परम मनोहर, पुण्यात्माओं की प्रीति एवं राजाओं की प्रभा है॥२७॥ वह बनियों में व्यापार रूप से और पापियों में कलह रूप से विराजती हैं। वह दयामयी, भक्तों की माता और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली है॥२८॥ मुने! वह विद्युत् की चञ्चलता है तथा भक्तों की सम्पत्ति की रक्षा करने वाली है। उसके बिना समस्त जगत् जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥२९॥ इस प्रकार मैंने वेदोक्त सर्वसम्मत प्रकार से दूसरी शक्ति का वर्णन कर दिया। वह सर्वपूज्या एवं सबकी वन्द्या है। अब अन्य देवी के गुण बता रहा हूँ, सुनो॥३०॥

---

१ क. ०क्ष्मीर्धृतिर्मा०। २ क. श्रुतिगु० ३. क. ०लहाङ्करा द०।

वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः। सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥३१॥
सुबुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम्। नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥३२॥
व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जनी। विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी[1] ॥३३॥
सर्वसंगीतसंधानतालकारणरूपिणी। विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वं च जीविनाम् ॥३४॥
यया विना च विश्वौघो मूको मृतसमः सदा। [2]व्याख्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी ॥३५॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया। हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा ॥३६॥
जपन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया। तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ॥३७॥
सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा। देवी तृतीया गदिता श्रीयुक्ता जगदम्बिका ॥३८॥
यथागमं यथाकिंचिदपरां संनिबोध मे। माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानां च च्छन्दसाम् ॥३९॥
संध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणां च विचक्षणा। द्विजातिजातिरूपा च [3]जपरूपा तपस्विनी ॥४०॥
ब्राह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्कारकारिणी। पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया ॥४१॥
तीर्थानि यस्या संस्पर्शं दर्शं वाञ्छन्ति शुद्धये। शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥४२॥

परमात्मा की वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञान की अधिष्ठात्री सर्वविद्यास्वरूपा देवी को सरस्वती कहा जाता है॥३१॥ वह सज्जनों को उत्तम बुद्धि, कविता, मेधा, प्रतिभा एवं स्मृति प्रदान करती है। अनेक प्रकार के सिद्धान्त-भेदों और अर्थों की कल्पना-शक्ति वही देती है॥३२॥ वह व्याख्या तथा बोध स्वरूपा है। समस्त सन्देहों को दूर करने वाली, विचार करने वाली और ग्रन्थों का निर्माण करने वाली शक्ति है॥३३॥ समस्त संगीत की संधि तथा ताल का कारण उसी का रूप है। प्रत्येक विश्व में जीवों के लिए वह विषय, ज्ञान और वाणी रूपा है। उसके बिना विश्व-समूह सदा मूक एवं मृतक तुल्य है। उसका एक हाथ व्याख्या की मुद्रा में सदा उठा रहता है। वह शान्तरूपा है तथा हाथ में वीणा और पुस्तक धारण किये रहती है। वह शुद्धसत्त्वस्वरूपा, सुशीला और विष्णु की प्रिया है। हिम (बर्फ) चन्दन, कुन्द, चन्द्र, कुमुद और कमल के समान श्वेत वर्ण वाली वह सरस्वती देवी रत्नों की माला पर परमात्मा श्री कृष्ण के नामों का जप करती है। वह तपःस्वरूपा, तपस्वियों के तप का फल देनेवाली, तपस्विनी, सिद्धिविद्यास्वरूपा तथा सर्वदा समस्तसिद्धिप्रदायिनी है॥३४-३८॥ शास्त्रानुसार उसकी थोड़ी-सी व्याख्या करके अब मैं चौथी देवी का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो!

वह देवी चारों वेद, वेदांग, छन्दःशास्त्र, सन्ध्या-वन्दन के मन्त्रों एवं तन्त्रों की जननी है। द्विजाति वर्णों के लिए उसने अपना यह रूप धारण किया है। वह जपरूपा, तपस्विनी, ब्रह्मण्यतेजोरूपा, समस्त संस्कारों को सुसम्पन्न करने वाली, एवं पवित्र रूपा सावित्री या गायत्री है। वह ब्रह्मा की प्रिय शक्ति है॥३९-४१॥ तीर्थगण अपनी शुद्धि की कामना से उस देवी का स्पर्श और दर्शन चाहते हैं। वह शुद्ध स्फटिक के समान कान्तिवाली,

---

१ क. ०णी ॥३३॥ स्वरसं०। २ क. ०ख्यासूत्रक०। ३ क. ०पा सरस्वती।

परमानन्दरूपा च परमा च सनातनी। परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी ॥४३॥
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता। यत्पादरजसा[1] पूतं जगत्सर्वं च नारद ॥४४॥
देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते। प्रेमप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी ॥४५॥
प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्या[2] सुन्दरी वरा। सर्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता ॥४६॥
वामार्धाङ्गस्वरूपा च सुगुणैस्तेजसा समा। परावरा[3] सर्वमाता परमाद्या सनातनी ॥४७॥
परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता। रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः ॥४८॥
रासमण्डलसम्भूता रासमण्डलमण्डिता। रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी ॥४९॥
गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका। परमाह्लादरूपा च सन्तोषामर्षरूपिणी ॥५०॥
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी। निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥५१॥
वेदानुसारध्यानेन विज्ञेया[4] सा विचक्षणैः। दृष्टिर्दृष्टा सहस्त्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुंगवैः ॥५२॥
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालंकारभूषिता। कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टश्रीयुक्ता भक्तविग्रहा ॥५३॥
श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदायिनी सर्वसंपदाम्। अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या ॥५४॥

शुद्ध सत्त्वरूप वाली, परमानन्दरूपा, परमा, सनातनी, परब्रह्मरूपा, निर्वाण (कैवल्य) पद प्रदान करने वाली (परब्रह्म की) ब्रह्मतेजोमयी शक्ति और उसकी अधिष्ठात्री देवता है। नारद! उसके चरणरज से यह सारा संसार पवित्र हुआ है ॥४२-४४॥ इस प्रकार मैं चार देवियों का वर्णन कर चुका। अब तुम्हें पांचवीं देवी का वर्णन सुना रहा हूँ।

वह (परब्रह्म के) प्रेम और प्राणों की अधिदेवता, तथा पञ्चप्राणस्वरूपिणी है। वह श्रीकृष्ण की प्राणाधिक प्रिया है। सम्पूर्ण देवियों में अग्रगण्य है। वह परम सुन्दरी समस्त सौभाग्य सम्पन्ना, मानिनी, गौरवशालिनी, (भगवान् श्रीकृष्ण की) वामार्धांगिनी अपने उत्तम गुणों तथा तेज में (परब्रह्म की) समानता प्राप्त करने वाली, परावरा, सबकी माता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, सर्वपूजिता और परमात्मा कृष्ण की रासक्रीड़ा की अधीश्वरी देवी है ॥४५-४८॥ रासमण्डल में प्रकट होकर उसकी शोभा बढ़ाने वाली, रासेश्वरी, सुरसिका, तथा रासस्थल में निवास करने वाली वह देवी गोलोक की निवासिनी है। गोपी का वेष बनानेवाली परमाह्लादरूपा, सन्तोष और अमर्ष का रूप धारण करने वाली, तीनों गुणों से रहित, निराकारा, निर्लिप्ता, आत्मस्वरूपिणी, निरीहा, निरहंकारा, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाली उस देवी को बुद्धिमान् लोग वेदानुसार ध्यान द्वारा ही जान पाते हैं। इस प्रकार सहस्रों श्रेष्ठ मुनिगण एवं सुरेन्द्रवृन्द ध्यान द्वारा उसका दर्शन करते हैं ॥४९-५२॥ वह अग्नि-शुद्ध (नीले रंग के दिव्य) वस्त्र धारण करती है। वह अनेक प्रकार के अलंकारों से भूषित, करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से सेवित, श्रीयुक्त तथा भक्तों के लिए शरीर धारण करने वाली है ॥५३॥ भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों को सकल संपत्तियों से श्रेष्ठ एकमात्र दास्यभक्ति प्रदान करने वाली यही देवी है। वह

---

१ क. ०सा भूतं ज०। २ क. ०र्वाभ्यः सुन्दरी परा। ३ क. ०रा सारभूता०। ४ क. विज्ञातां च वि०।

यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुंधरा। ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते॥५५॥
स्त्रीरत्नसारसंभूता [1]कृष्णवक्षःस्थलोज्ज्वला। यथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने॥५६॥
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा[2] पुरा। यत्पादपद्मनखरदृष्टये चाऽऽत्मशुद्धये॥५७॥
स्वप्नेऽपि नैव दृष्टा स्यात्प्रत्यक्षे तु च का कथा। तेनैव तपसा दृष्टा[3] भूरिवृन्दावने वने॥५८॥
कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्तिता। अंशरूपा कलारूपा कलांशांशसमुद्भवा॥५९॥
प्रकृतेः प्रतिविश्वं च रूपं स्यात्सर्वयोषितः। परिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यः प्रकीर्तिताः॥६०॥
या या प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय। प्रधानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी॥६१॥
विष्णुपादाब्जसंभूता द्रवरूपा सनातनी। पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी॥६२॥
दर्शनस्पर्शनस्नानपानैर्निर्वाणदायिनी। गोलोकस्थानगमनसुसोपानस्वरूपिणी॥६३॥
पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परा वरा। शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापङ्क्तिस्वरूपिणी॥६४॥
तपःसंपादिनी सद्यो भारते च तपस्विनाम्[4]। शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी॥६५॥

वृषभानु की पुत्री होकर प्रकट हुई है। वराहावतार में उसके चरण कमल के पावन स्पर्श से यह पृथिवी पवित्र हो गयी है। और जिसे ब्रह्मा आदि देवता नहीं देख सके थे वही यह देवी भारतवर्ष में सबको दृष्टिगोचर हो रही है॥५४-५५॥ मुने! स्त्री रूपी रत्नों के सार से उत्पन्न होकर यह श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर उसी प्रकार विराजती है, जैसे आकाशस्थित नवीन नील मेघों में बिजली चमक रही हो॥५६॥ पहले समय में ब्रह्मा ने अपनी शुद्धि के लिए उसके [illegible] सहस्र वर्षों तक तप किया, किन्तु उसे स्वप्न में भी वे नहीं देख सके। [illegible] ब्रह्मा को उसका बारम्बार दर्शन हो [illegible] 'राधा' कहा जाता है।

इस प्रकृति देवी के अंश, कला, [illegible] प्रत्येक [illegible] में प्रकृति का रूप समस्त स्त्रियों के रूप में दिखायी पड़ता है। ये पाँच देवियाँ परिपूर्णतम कही गई हैं। इन देवियों के जितने प्रधान अंश रूप हैं उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो! लोक को पवित्र करने वाली गंगा उसके प्रधान अंश का स्वरूप हैं। जो विष्णु के चरणकमल से उत्पन्न होकर 'द्रव' (बहाव) रूपा सनातनी एवं पापियों के पाप रूप ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्निरूप हैं॥६०-६२॥ दर्शन, स्पर्शन, स्नान और पान करने से गंगा मोक्ष प्रदान करती हैं तथा गोलोक धाम में पहुँचने के लिए सुन्दर सीढ़ी के रूप में वे विराजमान हैं॥६३॥ उनका रूप पवित्र है। वे तीर्थों तथा नदियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे शंकर के जटाजूट में मोतियों की पंक्ति जैसी लगती हैं॥६४॥ भारतवर्ष में तपस्वियों के तप को सद्यः सम्पन्न कराने वाली हैं। उनका शुद्ध एवं सत्त्वमय स्वरूप चन्द्रमा, श्वेतकमल

१ख. ०स्थलस्थिता। तथा। २क. ०णा तपः य०। ३क. ०ष्टा भुवि वृ०। ४क. ०म् चन्द्रप०।

निर्मला निरहंकारा साध्वी नारायणप्रिया। प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी ॥६६॥
विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती। तपः संकल्पपूजादि सद्यः संपादनी मुने ॥६७॥
सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा। दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी ॥६८॥
कलौ कलुषशुष्केध्मदाहनायाग्निरूपिणी। यत्पादपद्मस्पर्शात्सद्यःपूता वसुंधरा ॥६९॥
यत्स्पर्शं दर्शं वाञ्छन्ति तीर्थानामात्मशुद्धये। यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मास्ति निष्फलम् ॥७०॥
मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा। कल्पवृक्षस्वरूपा च भारते वृक्षरूपिणी ॥७१॥
त्राणाय[1] भारतानां च प्रजानां परदेवता। प्रधानांशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा ॥७२॥
शंकरप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा। नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता ॥७३॥
नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी। [2]नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता ॥७४॥
नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी। विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा ॥७५॥
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी। दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्तं यया हरेः ॥७६॥
तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते। सर्पमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥७७॥

या दूध के समान धवल है। वे मल और अहंकार से रहित हैं। वे परम साध्वी गंगा भगवान् नारायण को बहुत प्रिय हैं।

विष्णु-प्रिया तुलसी को प्रकृति देवी का प्रधान अंग माना गया है। ये पतिव्रता विष्णु के आभूषण स्वरूप हैं। ये सदा विष्णु के चरण में विराजमान रहती हैं। मुने! तपस्या, संकल्प और पूजा आदि सभी शुभ कर्म इन्हीं से शीघ्र सम्पन्न होते हैं ॥६५-६७॥ ये पुष्पों में मुख्य, पवित्र, सदा पुण्यप्रदा और दर्शन-स्पर्शन से शीघ्र निर्वाण पद प्रदान करने वाली हैं ॥६८॥ कलियुग में पापरूपी सूखी लकड़ी को जलाने के लिए ये अग्निरूप हैं। इनके चरण-कमलों के स्पर्श से यह पृथिवी पवित्र हो गयी है ॥६९॥ अपनी शुद्धि के लिए तीर्थ भी इनका दर्शन-स्पर्शन चाहते हैं। इनके बिना विश्व में सभी कर्म निष्फल समझे जाते हैं ॥७०॥ इनकी कृपा से मुमुक्षु जन मुक्त हो जाते हैं। ये भक्तों की सकल कामनायें पूर्ण करती हैं। भारत में वृक्ष होकर ये कल्पवृक्ष का काम करती हैं ॥७१॥ भारतवासियों का त्राण करने के लिए इनका यहाँ पधारना हुआ है। ये प्रजाओं की परम देवता हैं।

प्रकृति देवी के एक अन्य प्रधान अंश का नाम देवी 'मनसा' है। ये कश्यप की मानसपुत्री हैं; अतः 'मनसा' देवी कहलाती हैं। ये शंकर की प्रिय शिष्या, महाज्ञानविशारदा तथा अनन्त नामक नाग की भगिनी हैं। ये नागपूजिता, नागेश्वरी, नागमाता, सुन्दरी, नागवाहिनी, नागेन्द्र गण से युक्त, नाग के भूषणों से भूषित, नागेन्द्रवन्दिता, सिद्धयोगिनी, नाग पर वास करने वाली, विष्णुभक्ता, विष्णुरूपा, विष्णु की पूजा में निरत रहने वाली, तपःस्वरूपा, तप का फल देने वाली एवं तपस्विनी हैं। इन्होंने देव-वर्ष के हिसाब से तीन लाख वर्षों तक श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए तप किया है ॥७२-७६॥ वे भारतवर्ष में समस्त तपस्विनी और तपस्वियों में पूज्य एवं श्रेष्ठ हैं। सर्प-मन्त्रों की अधिदेवी, ब्रह्मतेज से प्रज्वलित, ब्रह्मस्वरूप तथा ब्रह्मचिन्तन में अत्यन्त तत्पर रहती हैं। वे कृष्ण एवं शंभु के अंशभूत जरत्कारु

---

१ क. ०य भवतीनां। २ ०न्द्रगुण०।

ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा। जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णशम्भुपतिव्रता ॥७८॥
आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद ॥७९॥
मातृका सा पूज्यतमा सा च च षष्ठी प्रकीर्तिता। शिशूनां प्रतिविश्वं तु प्रतिपालनकारिणी ॥८०॥
तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्तिकेयस्य कामिनी। षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता ॥८१॥
पुत्रपौत्रप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा। सुन्दरी[1] युवती रम्या सततं भर्तुरन्तिके ॥८२॥
स्थाने शिशुनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी। पूजा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ठ्यास्तु संततम् ॥८३॥
पूजा च सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः। एकविंशतितमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी ॥८४॥
[2]शश्वन्नियमिता चैषा नित्या काम्याऽप्यतः परा। मातृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी ॥८५॥
जले स्थले चान्तरिक्षे शिशूनां स्वप्नगोचरा। प्रधानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका ॥८६॥
प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमङ्गलदा सदा। सृष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी ॥८७॥
तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्तिता। प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥८८॥
पञ्चोपचारैर्भक्त्या च योषिद्भिः परिपूजिता। पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमङ्गलदायिनी ॥८९॥
शोकसंतापपापार्तिदुःखदारिद्र्यनाशिनी। परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम् ॥९०॥

की पतिव्रता पत्नी हैं। तपस्विवर आस्तीक मुनि की ये माता हैं।

नारद! प्रकृति देवी के एक प्रधान अंश को 'देवसेना' कहते हैं॥७७-७९॥ वे सब से श्रेष्ठ मातृका मानी जाती हैं। उन्हें लोग षष्ठी देवी कहते हैं। प्रत्येक विश्व में वे बच्चों का पालन करती हैं॥८०॥ वे तपस्विनी, विष्णु-भक्ता और कार्तिकेय की पत्नी हैं। प्रकृति का छठा अंश होने से वे 'षष्ठी' कही जाती हैं॥८१॥ वे जगत् के लिए सदा पुत्रपौत्रदात्री तथा धात्री हैं और अपने पति के समीप सुन्दरी एवं रमणीक युवती के रूप में वे सदा विद्यमान रहती हैं॥८२॥ बच्चों के लिए वे परम वृद्धा योगिनी हैं। लोग बारहों मास निरन्तर इनकी पूजा करते हैं॥८३॥ सन्तान उत्पन्न होने पर छठे दिन या इक्कीसवें दिन सूतिकागृह में इनकी पूजा होती है॥८४॥ ये निरन्तर नियमिता, नित्या, काम्या और परा रूप में रहती हैं। ये मातृरूपा, दयामयी, निरन्तर रक्षा करने वाली हैं। जल, स्थल तथा आकाश में ये शिशुओं को स्वप्न में दिखायी देती हैं॥८५३॥

प्रकृति देवी का एक प्रधान अंश मंगलचंडी के नाम से विख्यात है॥८६॥ यह देवी प्रकृति के मुख से उत्पन्न होकर सदा समस्त मंगलों का संपादन करती रहती हैं। सृष्टि के समय मंगलरूपा और संहार के समय कोपरूपा होने के कारण इन्हें पण्डितों ने 'मंगलचण्डी' कहा है। प्रत्येक मंगलवार को विश्व भर में ये पूजित होती हैं॥८७-८८॥ स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक पंचोपचार द्वारा इनको भलीभाँति पूजती हैं, जिससे ये उन्हें पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, शोभा और मंगल प्रदान करती हैं॥८९॥ प्रसन्न होने पर ये समस्त स्त्रियों के शोक, सन्ताप, पाप, कष्ट, दुःख-दारिद्र्य का नाश करके उनकी सकल कामनायें पूर्ण करती हैं॥९०॥ किन्तु यही माहेश्वरी रुष्ट होने पर क्षण मात्र में सारे विश्व का संहार करने में समर्थ हो जाती हैं।

---

१ क. ०री सुरमी र० । २ क. ०श्वद्वियति मात्येषा ।

रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी। प्रधानांशस्वरूपा च काली कमललोचना॥९१॥
दुर्गाललाटसंभूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः। दुर्गार्धांशस्वरूपा स्याद् गुणैः सा तेजसा समा॥९२॥
[1]कोटिसूर्यप्रभाजुष्टदिव्यसुन्दरविग्रहा। प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा बलवती परा॥९३॥
सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी। कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः॥
कृष्णभावनया शश्वत्कृष्णवर्णा सनातनी ॥९४॥
ब्रह्माण्डे सकलं हर्तुं शक्ता निःश्वासमात्रतः। रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकरक्षया॥९५॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता सुपूजिता। ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः॥९६॥
प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतिश्च वसुंधरा। आधारभूता सर्वेषां सर्वसस्यप्रसूतिका॥९७॥
रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया। प्रजादिभिः प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा॥९८॥
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसंपद्विधायिनी। यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम्॥९९॥
प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर। यस्य यस्य च याः पत्न्यस्ताः सर्वा वर्णयामि ते॥१००॥
स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता। यया विना हविर्दत्तं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः॥१०१॥

देवी काली को प्रकृति देवी का प्रधान अंश मानते हैं। इनके नेत्र कमल के समान हैं॥९१॥ शुम्भ-निशुम्भ के युद्ध में दुर्गा के ललाट से काली प्रकट हुई थीं। इन्हें दुर्गा का आधा अंश माना जाता है। ये गुण और तेज में उन्हीं के समान हैं॥९२॥ करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त दिव्य सुन्दर शरीर वाली, समस्त शक्तियों में श्रेष्ठ, अत्यन्त बलवती, समस्त सिद्धियों को देने वाली, परम सिद्ध योगिनी तथा भगवान् कृष्ण की भक्ता काली देवी तेज, गुण और पराक्रम में उन्हीं के समान हैं। वे सनातनी देवी भगवान् कृष्ण में अपनी शुद्ध भावना रखने के कारण निरन्तर कृष्ण-वर्ण की रहती हैं॥९३-९४॥ वे अपने निःश्वास मात्र से समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करने में सदैव समर्थ हैं। इसलिए दैत्यों के साथ उनकी रण-क्रीड़ा केवल लोक रक्षार्थ होती है॥९५॥ सुपूजित होने पर वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करती हैं। इसीलिए ब्रह्मादि देवगण, मुनिगण, मनुगण और मनुष्यवृन्द उनकी सदैव स्तुति करते हैं।

यह वसुन्धरा (पृथ्वी) भी प्रकृति देवी के प्रधान अंश से उत्पन्न हुई हैं। सम्पूर्ण जगत् इन्हीं पर ठहरा है। ये सर्वसस्यप्रसूतिका (सकल अन्नों को उत्पन्न करने वाली) कही जाती हैं॥९६-९७॥ ये रत्नों की खान, रत्नों से परिपूर्ण तथा सकल रत्नों की आधार हैं। राजा और प्रजा सभी लोग इनकी पूजा एवं स्तुति करते हैं। सब को जीविका प्रदान करने के लिए ही उन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। वे सम्पूर्ण सम्पत्ति का विधान करती हैं। वे न रहें तो सारा चराचर जगत् कहीं भी नहीं ठहर सकता॥९८-९९॥ मुनीश्वर! प्रकृति की उन कलाओं को तथा वे जिन-जिन की स्त्रियाँ हैं, वह सब भी मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

स्वाहा देवी अग्नि की पत्नी हैं जो तीनों लोकों में पूजित होती हैं। उनके बिना हवि प्रदान करने पर भी देव-गण उसे ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं॥१००-१०१॥ यज्ञ की दक्षिणा और दीक्षा दो पत्नियाँ हैं, जो सर्वत्र

---

१ क. ०ष्टपुष्टजाज्वल्यवि०।

दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता। यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥१०२॥
स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः। पूजिता पैतृकं दानं निष्फलं च यया विना ॥१०३॥
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता। आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना ॥१०४॥
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले। यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ॥१०५॥
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वन्दिता सदा। यया विना न संतुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः ॥१०६॥
ईशानपत्नी संपत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः। सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ॥१०७॥
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता। सर्वे लोका अधीराः स्युर्जगत्सु च यया विना ॥१०८॥
यमपत्नी क्षमा साध्वी सुशीला सर्वपूजिता। समुन्मत्ताश्च रुद्राश्च सर्वे लोका यया विना ॥१०९॥
क्रीडाधिष्ठातृदेवी सा कामपत्नी रतिः सती। केलिकौतुकहीनाश्च सर्वे लोका यया विना ॥११०॥
सत्यपत्नी सती मुक्तिः पूजिता जगतां प्रिया। यया विना भवेल्लोको बन्धुतारहितः सदा ॥१११॥
मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया। सर्वलोकाश्च सर्वत्र निष्ठुराश्च यया विना ॥११२॥
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता। यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ॥११३॥
सुकर्मपत्नी कीर्तिश्च धन्या मान्या च पूजिता। यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा ॥११४॥

पूजित होती हैं। उनके बिना समस्त विश्व में सभी कर्म निष्फल रहते हैं॥१०२॥ स्वधा पितरों की पत्नी हैं, उन्हें मुनिगण, मनुगण और नरगण पूजते रहते हैं। उनके बिना सभी पैतृक दान निष्फल होता है॥१०३॥ स्वस्ति देवी वायुदेव की पत्नी हैं। उनकी पूजा प्रत्येक विश्व में की जाती है। उनके बिना सभी आदान-प्रदान निष्फल होते हैं। पुष्टि गणपति की पत्नी हैं, जो इस भूतल पर पूजित होती हैं। उनके बिना सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं॥१०४-१०५॥ तुष्टि अनन्त की पत्नी हैं। सब लोग उनकी पूजा और वंदना करते हैं। उनके बिना समस्त लोक सब भाँति असन्तुष्ट रहते हैं॥१०६॥ ईशान की पत्नी सम्पत्ति देवों एवं मनुष्यों से सदैव पूजित होती हैं। उनके बिना विश्व भर की जनता दरिद्र कहलाती है॥१०७॥ धृति कपिल की पत्नी हैं। सभी लोग सर्वत्र उनका स्वागत करते हैं। उनके बिना संसार के सभी लोग अधीर रहते हैं॥१०८॥ क्षमा यम की पत्नी हैं। वह सुशीला पतिव्रता एवं सब की पूज्या हैं। उनके बिना समस्त लोक उन्मत्त और भयंकर हो जाता है॥१०९॥ काम की पत्नी रति हैं। वे पतिव्रता एवं क्रीड़ा की अधिष्ठात्री देवी हैं। उनके बिना समस्त लोक केलि और कौतुक से वंचित हो जाते हैं॥११०॥ सत्य की पत्नी मुक्ति हैं। वह सती समस्त संसार को प्रिय हैं। इसीलिए वह पूजित होती हैं। उनके विना समस्त लोक सदा बन्धुता-रहित हो जाता है॥१११॥ दया मोह की पत्नी हैं। वे साध्वी, पूज्य एवं जगत्प्रिय हैं। उनके बिना समस्त लोक निष्ठुर माने जाते हैं॥११२॥ मुने! पुण्य की पत्नी प्रतिष्ठा हैं। वे पुण्य रूपा देवी सर्वत्र पूजित होती हैं। उनके बिना समस्त जगत् जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥११३॥ सुकर्म की पत्नी कीर्ति है, जो धन्या, मान्या एवं पूज्या हैं। उनके बिना सम्पूर्ण जगत् यशोहीन होने से मृतक की भाँति हो जाता है॥११४॥ क्रिया उद्योग की पत्नी हैं। इन आदरणीया देवी से सब लोग सहमत हैं। नारद! इनके बिना यह

क्रिया उद्योगपत्नी[1] च पूजिता सर्वसंगता। यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नमिव नारद ॥११५॥
अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता। यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम् ॥११६॥
सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी। अर्धावयवरूपा च द्वापरे संहृता ह्रिया ॥११७॥
कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्र[2] व्याप्तिकारणात्। कपटेन सह भ्रात्रा भ्रमत्येव गृहे गृहे ॥११८॥
शान्तिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते। याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥११९॥
ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा। याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मृतसमं सदा ॥१२०॥
मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा। परमात्मा च विश्वौघा निराधारा यया विना ॥१२१॥
सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती। श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता ॥१२२॥
कालाग्निरुद्रपत्नी च निद्रा[3] या सिद्धयोगिनाम्। सर्वलोकाः समाच्छन्ना[4] मायायोगेन रात्रिषु ॥१२३॥
कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च[5]। याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्तुं न शक्यते ॥१२४॥
क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते। याभ्यां व्याप्तं जगत्क्षोभयुक्तं चिन्तितमेव च ॥१२५॥
प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा। याभ्यां विना जगत्स्रष्टुं विधाता च नहीश्वरः ॥१२६॥

समस्त जगत् उच्छिन्न-सा हो जाता है॥११५॥ मिथ्या, अधर्म की पत्नी हैं। धूर्त लोग इस देवी की पूजा करते हैं। इसके बिना विधि-रचित यह सारा जगत् अस्तित्वहीन दिखाई देता है॥११६॥ सत्ययुग में यह देवी अदृश्य थी। त्रेता में सूक्ष्म रूप से, द्वापर में लज्जा के कारण सिकुड़कर आधे शरीर से और कलियुग में सर्वत्र व्याप्त होने के कारण महाप्रगल्भ होकर रहती हैं। अपने भाई कपट के साथ घर-घर घूमती है॥११७-११८॥ सुशील की शान्ति और लज्जा ये दो माननीया पत्नियाँ हैं। नारद! इनके बिना समस्त जगत् उन्मत्त की भाँति दिखायी देता है॥११९॥ ज्ञान की बुद्धि, मेधा और स्मृति ये तीन भार्याएँ हैं, जिनके बिना यह सारा जगत् मूढ़ता के कारण मृतक के समान हो जाता है॥१२०॥ मूर्ति, धर्म की पत्नी है। कमनीय कान्ति वाली यह सब को मुग्ध किये रहती हैं। इसके बिना परमात्मा एवं विश्व समूह भी निराधार हो जातां है॥१२१॥ इसके स्वरूप को अपनाकर ही साध्वी लक्ष्मी सर्वत्र शोभा पाती है। श्री और मूर्ति दोनों इसके स्वरूप हैं। यह परम मान्य, धन्य एवं सुपूज्य हैं॥१२२॥ निद्रा कालाग्नि रुद्र की पत्नी है, जो रात्रि में समस्त लोकों को मायायोग से आच्छन्न करके सिद्धयोगियों को भी अभिभूत कर देती है॥१२३॥ काल की संध्या, रात्रि और दिन ये तीन स्त्रियाँ हैं, इनके बिना ब्रह्मा भी संख्या बताने में असमर्थ हैं॥१२४॥ क्षुधा तथा पिपासा लोभ की स्त्रियाँ हैं, जो लोक में धन्या, मान्या होकर पूजित हो रही हैं। इन्हीं के कारण सारा जगत् क्षुब्ध और चिन्तित रहता है॥१२५॥ तेज की प्रभा और दाहिका दो स्त्रियाँ हैं, जिनके बिना विधाता भी जगत् की सृष्टि करने में असमर्थ हैं॥१२६॥ काल की पुत्रियाँ—जरा और मृत्यु—ज्वर की प्रिय भार्याएँ हैं।

---

१ क. ०त्नी ईर्ष्या सा। २ क व्यापिकाबलात्। ३ क. ०द्रा सा सिद्धयोगिनी। स०। ४ क. ०न्ना यया योगेन रा०। ५ क. च। प्रभा च या०।

कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वरस्य प्रिये प्रिये। याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मिते विधौ॥१२७॥
निद्राकन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्यासुखप्रिये। याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ॥१२८॥
वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते। याभ्यां शश्वज्जत्सर्वं जीवन्मुक्तमिदं मुने॥१२९॥
अदितिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः। दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः॥१३०॥
उपयुक्ताः सृष्टिविधावेताश्च प्रकृतेः कलाः। कलाश्चान्याः सन्ति बह्व्यस्तासु काश्चिन्निबोध मे॥१३१॥
रोहिणी चन्द्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी। शतरूपा मनोर्भार्या शचीन्द्रस्य च गेहिनी॥१३२॥
तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुन्धती। अहल्या गौतमस्त्री स्यादनसूयाऽत्रिकामिनी॥१३३॥
देवहूतिः कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी। पितॄणां मानसी कन्या मेनका साऽम्बिकाप्रसूः॥१३४॥
लोपामुद्रा तथाऽऽहूतिः कुबेरस्य तु कामिनी। वरुणानी यमस्त्री च बलेर्विन्ध्यावलीति च॥१३५॥
कुन्ती च दमयन्ती च यशोदा देवकी सती। गान्धारी द्रौपदी शैब्या सावित्री सत्यवत्प्रिया॥१३६॥
वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कलावती। मन्दोदरी च कौसल्या सुभद्रा कैकयी तथा॥१३७॥
रेवती सत्यभामा च कालिन्दी लक्ष्मणा तथा। मित्रविन्दा नाग्नजिती तथा जाम्बवती परा॥१३८॥
लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता। कला योजनगंधा च व्यासमाता महासती॥१३९॥
बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी। प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती॥१४०॥

इनकी सत्ता न रहे तो ब्रह्मा के बनाये हुए जगत् की व्यवस्था भी बिगड़ जाय॥१२७॥ हे ब्रह्मपुत्र ! निद्रा की कन्या तन्द्रा और प्रीति ये दोनों सुख की स्त्रियाँ हैं। ये दोनों ब्रह्म-रचित समस्त जगत् में व्याप्त हैं॥१२८॥ मुने ! श्रद्धा और भक्ति ये वैराग्य की दो आदरणीय स्त्रियाँ हैं, जिनके द्वारा यह समस्त संसार निरन्तर जीवन्मुक्त हो सकता है॥१२९॥ अदिति देवों की माता हैं। सुरभी गौओं की जननी है तथा दैत्यों की माता दिति हैं और इसी भाँति कद्रू, विनता एवं दनु भी सृष्टि-विधान में उपयोगी होने के कारण प्रकृति की कलाएँ हैं। इस प्रकार प्रकृति देवी की अन्य भी अनेक कलाएँ हैं, जिनमें से कुछ को मैं बता रहा हूँ, सुनो॥१३०–१३१॥

रोहिणी चन्द्रमा की पत्नी हैं। संज्ञा सूर्य की कान्ता हैं। शतरूपा मनु की स्त्री हैं। शची इन्द्र की भार्या हैं॥१३२॥ तारा बृहस्पति की पत्नी हैं और वशिष्ठ की अरुन्धती, गौतम की अहल्या तथा अत्रि की अनुसूया पत्नी हैं॥१३३॥ देवहूति कर्दम की और प्रसूति दक्ष की पत्नियाँ हैं। पितरों की मानसी कन्या मेनका पार्वती की माता हैं॥१३४॥ इसी प्रकार कुबेर की पत्नी लोपामुद्रा और आहूति तथा वरुणानी, यम की स्त्री, बलि की पत्नी विन्ध्यावली, कुन्ती, दमयन्ती, यशोदा, सती देवकी, गान्धारी, द्रौपदी, शैब्या, सत्यवान् की प्रिया सावित्री, राधिका जी की माता तथा वृषभानु की पतिव्रता पत्नी कलावती, मन्दोदरी, कौसल्या, सुभद्रा, कैकेयी, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, नाग्नजिती, जाम्बवती, लक्ष्मणा, रुक्मिणी और सीता जो स्वयं लक्ष्मी कहलायीं, व्यासमाता महासती योजनगन्धा॥१३५-१३९॥ बाण की पुत्री उषा, उसकी सखी चित्रलेखा, प्रभावती, भानुमती, सती मायावती, भार्गव (परशुराम) की माता रेणुका, बलराम की माता रोहिणी, और श्रीकृष्ण

रेणुका च भृगोर्माता हलिमाता च रोहिणी। एकाऽनंशा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती॥१४१॥
बह्व्यः सन्ति कलाश्चैवं प्रकृतेरेव भारते। या याश्च ग्रामदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेः कलाः॥१४२॥
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः। योषितामपमानेन प्रकृतेश्च पराभवः॥१४३॥
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालंकारचन्दनैः॥१४४॥
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालंकारचन्दनैः। पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता॥१४५॥
सर्वाः प्रकृतिसंभूता उत्तमाधममध्यमाः। सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः॥१४६॥
मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः। सुखसंभोगवत्यश्च[1] स्वकार्ये तत्पराः सदा॥१४७॥
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसंभवाः। दुर्मुखाः कुलटा धूर्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः॥१४८॥
पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः। प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः॥१४९॥
एवं निगदितं सर्वं प्रकृतेर्भेदपञ्चकम्। ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते॥१५०॥
पूजिता सुरथेनाऽऽदौ दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी। द्वितीया रामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना॥१५१॥
तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता। जाताऽऽदौ दक्षपत्न्यां च निहन्तुं दैत्यदानवान्॥१५२॥

की परम साध्वी भगिनी दुर्गास्वरूपा एकानंशा (प्रकृति की कलायें हैं)॥१४०-१४१॥ इस प्रकार प्रकृति की अनेक कलाएँ भारत में विख्यात हैं। जो-जो ग्राम देवियाँ हैं वे सभी प्रकृति की कलाएँ हैं॥१४२॥ इसी भाँति प्रत्येक विश्व में जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सब को प्रकृति की कला का के अंश का अंश समझना चाहिए। (इसलिए) उनका अपमान करने पर प्रकृति का अपमान होता है॥१४३॥ जिसने वस्त्र, अलंकार एवं चन्दन से पति-पुत्र वाली सती ब्राह्मणी का पूजन किया है, उसने प्रकृति की पूजा की है॥१४४॥ जिसने वस्त्र, आभूषण तथा चन्दन द्वारा ब्राह्मण की अष्टवर्षीया कुमारी की पूजा की है, उसने प्रकृति की पूजा की है॥१४५॥ संसार की उत्तम, मध्यम और अधम सभी स्त्रियाँ प्रकृति से ही उत्पन्न हैं, जिनमें सत्त्व अंश से उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ सुशीला एवं प्रतिव्रता होने के कारण उत्तम कही गयी हैं॥१४६॥ जिन्हें भोग ही प्रिय है, वे राजस अंश से प्रकट स्त्रियाँ, 'मध्यम' श्रेणी की कही गई हैं। वे सुख-भोग में आसक्त होकर सदा अपने कार्य में लगी रहती हैं। प्रकृति देवी के तामस अंश से उत्पन्न स्त्रियाँ अधम कहलाती हैं। उनके कुल का कुछ पता नहीं रहता। वे मुख से दुर्वचन बोलने वाली, कुलटा, धूर्त, स्वेच्छाचारिणी और कलहप्रिया होती हैं॥१४७-१४८॥ पृथिवी की कुलटायें और स्वर्ग की वेश्यायें प्रकृति के तम अंश से उत्पन्न हैं। अतः इन्हें पुंश्चली कहा जाता है॥१४९॥ इस प्रकार मैंने प्रकृति के पाँचो भेद तुम्हें बता दिए। वे सभी देवियाँ पृथ्वी पर इस पुण्य क्षेत्र भारत में पूजित हुई हैं॥१५०॥

प्रकृति की दूसरी कला, भीषण कष्टों का नाश करने वाली भी दुर्गा जी हैं, जिनकी उपासना सर्वप्रथम राजा सुरथ ने की थी। पश्चात् रावण-वधार्थ भगवान् रामचन्द्र ने भी उनकी आराधना की॥१५१॥ उसके पश्चात् वह जगन्माता तीनों लोकों में पूजित हुई। दैत्य-दानवों के विनाशार्थ वह सब से पहले दक्ष की पत्नी में अवतरित हुई

---

१ क. ०वश्याश्च स्व० ।

ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया। जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम्॥१५३॥
गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः। बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद॥१५४॥
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमं परिपूजिता। त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवः॥१५५॥
सावित्री प्रथमं चापि भक्त्या वै परिपूजिता। तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः॥१५६॥
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता। तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः॥१५७॥
प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले। पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना॥१५८॥
गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः। गवां गणैः सुरगणैस्तत्पश्चान्मायया हरेः॥१५९॥
तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा। पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा॥१६०॥
पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेन च पूजिता। शंकरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते॥१६१॥
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः। पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः॥१६२॥
कला या या सुसंभूताः पूजितास्ताश्च भारते। पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने॥१६३॥
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम्। यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१६४॥

इति श्रीब्र० म० प्रकृ० नारायणनारदसंवादे प्रकृतिस्वरूपतद्भेदवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

थीं॥१५२॥ अनन्तर उन्होंने यज्ञ में पति की निन्दा के कारण देह त्याग कर हिमवान् की पत्नी मेना से जन्म ग्रहण किया और पशुपति (शिव) को पति के रूप में प्राप्त किया॥१५३॥ नारद! स्वयं कृष्ण ही गणेश हुए हैं और स्कन्द विष्णु की कला से उत्पन्न हुए हैं। ये दोनों शिव के पुत्र कहे जाते हैं॥१५४॥ लक्ष्मी की पूजा सर्वप्रथम राजा मंगल ने की। अनन्तर तीनों लोकों में देवता, मुनि एवं मनुष्यों द्वारा वह पूजित हुईं॥१५५॥ सावित्री की प्रथम पूजा भक्ति ने की। उसके पश्चात् तीनों लोकों में देव, मुनि एवं मानवों ने उनकी पूजा की॥१५६॥ सर्वप्रथम ब्रह्मा ने सरस्वती देवी का सम्मान किया। अनन्तर तीनों लोकों में देवता, मुनि और मनुष्य वृन्दों ने उनकी अर्चना की॥१५७॥ कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन सर्वप्रथम गोलोक के रासमण्डल में परमात्मा श्रीकृष्ण ने राधिका की पूजा की॥१५८॥ पश्चात् गोपिकाओं, गोपों और उनके बालक-बालिकाओं तथा गौओं, देवों एवं विष्णु की माया ने उनकी पूजा की॥१५९॥ अनन्तर ब्रह्मा आदि देवगण, मुनिगण और मनुष्यों ने भक्तिपूर्वक पुष्प, धूप आदि के द्वारा राधा की पूजा-वन्दना की॥१६०॥ पृथिवी पर पुण्य क्षेत्र भारत में सर्वप्रथम सुयज्ञ ने शंकर जी के उपदेश देने पर राधा देवी की पूजा की॥१६१॥ तत्पश्चात् परमात्मा की आज्ञा से तीनों लोकों में मुनिगण और देवगण भक्तिपूर्वक पुष्प, धूपादि द्वारा उनकी पूजा की॥१६२॥ मुने! इस प्रकार (प्रकृति से उत्पन्न) जितनी कलाएँ हैं वे भारत में ग्रामदेवियाँ होकर गाँवों और नगरों में पूजित होती हैं॥१६३॥ इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रकृति का सभी शुभचरित और शास्त्रानुसार उनका लक्षण बता दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो।?।१६४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में प्रकृति-स्वरूप और
उसका भेद वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो। विबोधनार्थं बोधस्य व्यासतो वक्तुमर्हसि॥१॥
सृष्टिराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह। कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदां वर॥२॥
भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे। व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम्॥३॥
तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम्। स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम्॥४॥

नारायण उवाच

नित्यात्मा च नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा। विश्वेषां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च॥५॥
तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभागः स नित्यकः। तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीना सनातनी॥६॥
यथाऽग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ। शश्वद्युक्ता न भिन्नासा तथा प्रकृतिरात्मनि॥७॥
विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः। विना मृदा कुलालो हि घटं कर्तुं नहीश्वरः॥८॥
न हि क्षमस्तथा ब्रह्मा सृष्टिं स्रष्टुं तया विना। सर्वशक्तिस्वरूपा सा तया स्याच्छक्तिमान्सदा॥९॥

अध्याय २

श्रीकृष्ण और राधा से देव-देवियों की उत्पत्ति का वर्णन

नारद बोले—विभो! मैंने संक्षेपतः देवियों का समस्त चरित सुन लिया, किन्तु ज्ञान-वृद्धि के लिए इसे पुनः विस्तार के साथ कहने की कृपा करें॥१॥ वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ! सृष्टि-विधान के समय सृष्टि की आद्या देवी कैसे प्रकट हुई? और वह पाँच रूपों में कैसे हो गई?॥२॥ इस संसार में देवी की त्रिगुणमयी कला से जो-जो देवियाँ उत्पन्न हुईं, उनका चरित्र मैं विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ॥३॥ आप उनके जन्म की कथा, उनके ध्यान, पूजा का उत्तम विधान, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य और मंगलदायक शौर्य वर्णन करने की कृपा करें॥४॥

श्रीनारायण बोले—दिशाओं की भाँति आत्मा, आकाश और काल नित्य हैं, एवं विश्व-गोल तथा गोलोकधाम नित्य हैं॥५॥ उसके एक प्रदेश के लम्बे भाग में स्थित वैकुण्ठ भी नित्य है। उसी प्रकार ब्रह्म में लीन रहने वाली सनातनी प्रकृति भी नित्य है॥६॥ जिस प्रकार अग्नि में दाहिका शक्ति, चन्द्र और कमल में शोभा तथा सूर्य में प्रभा निरन्तर युक्त रहती है कभी भिन्न नहीं होती। उसी प्रकार परमात्मा में प्रकृति नित्य विराजमान रहती है॥७॥ जिस भाँति विना सुवर्ण के सोनार कुण्डल (आदि आभूषण) बनाने में असमर्थ रहता है, बिना मिट्टी के कुम्हार घट आदि नहीं बना सकता है॥८॥ उसी भाँति बिना प्रकृति के परमात्मा सृष्टि करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। जिसके सहारे श्रीहरि सदा शक्तिमान् बने रहते हैं, वह प्रकृति देवी ही शक्तिस्वरूपा है॥९॥

ऐश्वर्यवचनःशक् च तिः पराक्रमवाचकः। तत्स्वरूपा तयोर्दात्री या सा शक्तिः प्रकीर्तिता॥१०॥
समृद्धिबुद्धिसंपत्तियशसां वचनो भगः। तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा॥११॥
तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते। स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः॥१२॥
तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा। वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्॥१३॥
अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्। सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपोषकम्॥१४॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः। वदन्ति इति ते कस्य तेजस्तेजस्विनं विना॥१५॥
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम्। स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम्॥१६॥
अतीव सुन्दरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम्। किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्॥१७॥
नवीननीरदाभासं रासैकश्यामसुन्दरम्। शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचकलोचनम्॥१८॥
मुक्तासारमहास्वच्छदन्तपङ्क्तिमनोहरम्। मयूरपुच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम्॥१९॥
सुनासं सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहकारकम्। ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम्॥२०॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्। सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम्॥२१॥
सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम्। परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारणम्॥२२॥

(शक्ति शब्द में) शक् का अर्थ है ऐश्वर्य और ति का अर्थ है पराक्रम। ये दोनों जिसके स्वरूप हैं तथा जो इन दोनों गुणों को प्रदान करती है, उसे शक्ति कहा जाता है॥१०॥ भग शब्द समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति एवं यश का बोधक है। उससे सम्पन्न होने के कारण शक्ति को भगवती कहा जाता है; क्योंकि वह सदैव भगस्वरूपा है॥११॥ उसी से सदैव युक्त रहने के कारण परमात्मा भगवान् कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण, स्वेच्छामय एवं निराकार होते हुए भी साकार हैं॥१२॥ उन परब्रह्म परमात्मा एवं ईश्वर को योगी लोग सदा तेजोरूप निराकार कह कर उनका ध्यान करते हैं, वे अदृश्य रहते हुए भी सब को देखने वाले, सर्वज्ञाता, समस्त के कारण, सर्वप्रद, समस्त रूपों में रहने वाले, रूपरहित तथा सब के पोषक हैं॥१३-१४॥ किन्तु उनके सूक्ष्मदर्शी भक्त वैष्णव जन ऐसा नहीं स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि बिना तेजस्वी व्यक्ति के वह तेज किसका कहा जायगा। इस लिए उस तेजोमण्डल के मध्य में वह परम तेजस्वी परब्रह्म स्थित रहते हैं, जो स्वेच्छामय, सर्वरूप तथा समस्त कारणों के कारण हैं। वे अत्यन्त सुन्दर और अत्यन्त मनोहर रूप धारण कर के किशोरावस्था में वर्तमान रहते हैं। वे शान्त, सब के कान्त और परात्पर (श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ) हैं॥१५-१७॥ उनका श्याम विग्रह नवीन मेघ की कान्ति का परमधाम है। इनके विशाल नेत्र शरत् काल के मध्याह्न में खिले हुए कमलों की शोभा को तुच्छ करने वाले हैं। मोतियों की शोभा को छीनने वाली उनकी सुन्दर दन्तपंक्ति है। मुकुट में मोरपंख सुशोभित है। मालती की माला से वे अनुपम शोभा पा रहे हैं। उनकी नासिका सुन्दर है। मुख पर मुस्कान छायी है। वे परम मनोहर प्रभु भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए व्याकुल रहते हैं। प्रज्वलित अग्नि के समान विशुद्ध पीताम्बर से उनका विग्रह परम मनोहर हो गया है। उनकी दो भुजाएँ हैं। हाथ में बांसुरी सुशोभित है। वे रत्नमय भूषणों से भूषित, सब के आधार, सब के ईश, समस्त शक्तियों से युक्त, प्रभु, समस्त ऐश्वर्यों के प्रदाता, सर्वरूप स्वतन्त्र, सर्वमंगल, परिपूर्णतम, सिद्ध, सिद्धिदायक और सिद्धि के कारण हैं॥१८-२२॥ इस प्रकार के सनातन

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वदेवंरूपं सनातनम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्॥२३॥
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते। स चाऽऽत्मा परमं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥२४॥
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः। भक्तिदास्यप्रदाता यः स कृष्णः परिकीर्तितः॥२५॥
कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजवाचकः। सर्वबीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥२६॥
असंख्यब्रह्मणां पाते कालेऽतीतेऽपि नारद। यद्गुणानां[1] नास्ति नाशस्तत्समानो गुणेन च॥२७॥
स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुस्त्वेक एव च। सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः॥२८॥
स्वेच्छामयःस्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह। स्त्रीरूपा वामभागांशाद्दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः॥२९॥
तां ददर्श महाकामी कामाधारः सनातनः। अतीव कमनीयां च चारुचम्पकसंनिभाम्॥३०॥
पूर्णेन्दुबिम्बसदृशनितम्बयुगलां पराम्। सुचारुकदलीस्तम्भसदृशश्रोणिसुन्दरीम्॥३१॥
श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम्। पुष्ट्या युक्तां सुललितां मध्यक्षीणां मनोहराम्॥३२॥
अतीव सुन्दरीं[2] शान्तां सस्मितां वक्रलोचनाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥३३॥
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबन्तीं संततं मुदा। कृष्णस्य[3] सुन्दरमुखं चन्द्रकोटिविनिन्दकम्॥३४॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना। समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥३५॥

रूप का वैष्णव गण निरन्तर ध्यान करते हैं। उनकी कृपा से जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय का अत्यन्त नाश हो जाता है॥२३॥ ब्रह्मा की पूर्ण आयु उनके एक निमेष के बराबर है, वे ही परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं॥२४॥ (कृष्ण शब्द में) 'कृष्' का अर्थ है भक्ति और 'न' का अर्थ है दास्य। इसलिए भक्ति और दास्य भाव के प्रदायक भगवान् कृष्ण हैं, ऐसा कहा जाता है॥२५॥ 'कृष्' समस्त वाची है और ण, का अर्थ है बीज। अतः समस्त बीजस्वरूप परब्रह्म 'कृष्ण' कहे गए हैं॥२६॥ नारद! असंख्य ब्रह्मा की आयु पर्यन्त जिनके गुणों का नाश नहीं होता है उनके समान गुण में कोई नहीं है वे सृष्टि के आदि में एकाकी थे। उस समय उनके मन में सृष्टि करने की इच्छा हुई। अपने अंशभूत काल से प्रेरित होकर ही वे प्रभु सृष्टिकर्म के लिए उन्मुख हुए थे। उनका स्वरूप स्वेच्छामय है। वे अपनी इच्छा से ही दो रूपों में प्रकट हो गए। उनका वामांश स्त्री रूप में और दक्षिण भाग पुरुष रूप में आविर्भूत हुए॥२७-२९॥ वे सनातन, महाकामी तथा कामाधार पुरुष उस दिव्य रमणी को देखने लगे। उस रमणी की कान्ति मनोहर चंपा के समान थी। पूर्णचन्द्र-मंडल के समान उसके गोल-गोल नितम्ब थे। सुंदर कदली-स्तंभ के समान उसके ऊरु भाग थे। सुन्दर विल्बफल के समान उसके दोनों स्तन थे। उसका शरीर पुष्ट एवं कमनीय था। मध्यभाग (कटि-प्रदेश) पतला था। वह सुन्दरी शान्त, मन्द मुसकान से युक्त तथा टेढ़ी चितवन वाली थी। उसने अग्नि के समान चमकने वाले वस्त्र तथा रत्नों के आभूषण धारण कर रखे थे। वह अपने चकोररूपी चक्षुओं के द्वारा श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का निरन्तर हर्षपूर्वक पान कर रही थी। श्रीकृष्ण का मुखमण्डल इतना भव्य था कि उसके सामने करोड़ों चन्द्र भी नगण्य थे। उस देवी के ललाट के ऊपरी भाग में कस्तूरी की बिंदी थी। नीचे चन्दन की

---

१ क. यदंशानां ना०। २ क. ०रीं रामां स०। ३ क. ०स्य मुखचन्द्रं च च०।

सुवक्रकबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नेन्द्रसारहारं च दधतीं कान्तकामुकीम् ॥३६॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टशोभासमन्विताम्[1] । गमने राजहंसीं तां दृष्ट्या खञ्जनगञ्जनीम् ॥३७॥
अतिमात्रं[2] तया सार्धं रासेशो रासमण्डले । रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीडां चकार ह ॥३८॥
नानाप्रकारश्शृङ्गारं शृङ्गारो मूर्तिमानिव । चकार सुखसंभोगो यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥३९॥
ततः स च परिश्रान्तस्तस्या योनौ जगत्पिता । चकार वीर्याधानं च नित्यानन्दः शुभक्षणे ॥४०॥
गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत । निःससार श्रमजलं श्रान्तायास्तेजसा हरेः ॥४१॥
महासुरतखिन्नाया निःश्वासश्च बभूव ह । तदाधारश्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम् ॥४२॥
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह । निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च ॥४३॥
बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा । तत्पत्नी सा च तत्पुत्राः प्राणाः पञ्च च जीविनाम् ॥४४॥
प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च । बभूवुरेव तत्पुत्रा अधः प्राणाश्च पञ्च च ॥४५॥
घर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् । तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा ॥४६॥
अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह । शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥४७॥

छोटी-छोटी बिंदियाँ थीं। साथ ही मध्य ललाट में सिंदूर की बिंदी भी शोभा पा रही थी। प्रियतम के प्रति अनुरक्त चित्त वाली उस देवी के केश[1] घुघराले थे। मालती के पुष्पों का सुन्दर हार उसे सुशोभित कर रहा था। करोड़ों चन्द्रों की प्रभा से सुप्रकाशित परिपूर्ण शोभा से इस देवी का श्रीविग्रह सम्पन्न था। यह अपनी चाल से राजहंस एवं खंजन पक्षी के गर्व को नष्ट कर रही थी ॥३०-३७॥ रासेश्वर श्रीकृष्ण उस देवी को देख कर रास के उल्लास में उल्लसित हो उठे। वे उसके साथ रासमण्डल में पधारे। एकान्त में रासक्रीड़ा होने लगी। मानो स्वयं शृंगार ही मूर्तिमान् होकर नाना प्रकार की शृंगारोचित चेष्टाओं के साथ रसमयी क्रीड़ा कर रहा हो। उस रास में उन्होंने एक ब्रह्मा की आयु पर्यन्त उसके साथ सुख-सम्भोग किया ॥३८-३९॥ पश्चात् जगत् के पिता उन नित्यानन्द ने परिश्रान्त होकर शुभमूहूर्त में उसके गर्भ में वीर्य का निक्षेप किया ॥४०॥ सुव्रत ! रतिक्रीड़ा के अन्त में उस कामिनी के शरीर से, जो भगवान् के तेज से श्रान्त हो गयी थी, प्रस्वेद बह चला और उस महासुख से खिन्न होने के कारण उसका निःश्वास जोर-जोर से चलने लगा। उसके शरीर से निकले हुए प्रस्वेद-जल से सम्पूर्ण विश्वगोल का निर्माण हुआ। और उसका निःश्वास वायु सब का आधार हुआ। संसार में सभी जीवों का निःश्वास वायु हुआ ॥४१-४३॥ उस मूर्तिमान् वायु के बाँयें अंग से उसकी प्राणवल्लभा पत्नी प्रकट हुई। उससे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो जीवधारियों के प्राण रूप हैं ॥४४॥ प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यही पाँचों उसके पुत्र हैं। पाँच अधः प्राण भी हैं ॥४५॥ फिर उस स्वेद-जल से जल के महान् अधिदेव वरुण उत्पन्न हुए, जिनके बाँयें भाग से उनकी पत्नी वरुणानी उत्पन्न हुई ॥४६॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण की उस शक्ति ने उनके द्वारा गर्भ धारण किया, जो सौ

---

१ क. ०टिसूर्यप्र० । २ क. दृष्टमा० ।

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया। कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥४८॥
शतमन्वन्तरातीतकाले परमसुन्दरी। सुषावाण्डं सुवर्णाभं विश्वाधारं लयं परम् ॥४९॥
दृष्ट्वा चाण्डं हि सा देवी हृदयेन विदूयता। उत्ससर्ज च कोपेन[1] तदण्डं गोलके जले ॥५०॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह। शशाप देवी देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम् ॥५१॥
यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे। भव त्वमनपत्याऽपि चाद्यप्रभृति निश्चितम् ॥५२॥
या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः। अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवीजिह्वाग्रात्सहसा ततः। आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥५४॥
पीतवस्त्रपरिधाना वीणापुस्तकधारिणी। रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५५॥
अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपा बभूव ह। वामार्धाङ्गा च कमला दक्षिणार्धा च राधिका ॥५६॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह। दक्षिणार्धः स्याद्द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः ॥५७॥
उवाच वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य भव कामिनी। अत्रैव मानिनी राधा नैव भद्रं भविष्यति ॥५८॥
एवं लक्ष्मीं संप्रददौ तुष्टो नारायणाय वै। संजगाम च वैकुण्ठं ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः ॥५९॥

मन्वन्तर के समय तक ब्रह्म-तेज से प्रज्वलित रहा ॥४७॥ तब भगवान् कृष्ण के प्राणों की अधिदेवता, उनके प्राणों की प्यारी, उनकी संगिनी और उनके वक्षःस्थल पर निरन्तर विराजमान उस परम सुन्दरी ने सौ मन्वन्तर का समय व्यतीत हो जाने पर एक सुवर्ण के समान प्रकाशमान अण्डा उत्पन्न किया, जो समस्त विश्व का परम आधार हुआ ॥४८-४९॥ उस अण्डे को देख कर उस देवी ने हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई क्रोध से उस अंडे को विश्वगोलक के अथाह जल में छोड़ दिया ॥५०॥ भगवान् कृष्ण ने स्त्री द्वारा उस अण्डे का उस प्रकार का त्याग देख कर हा-हाकार करते हुए उसी समय उस देवी को यथोचित शाप दिया—'हे कोपस्वभाव वाली एवं अत्यन्त निष्ठुरे! तुमने सन्तान का त्याग किया है, अतः आज से सदैव के लिए तू निश्चित ही सन्तानहीना होकर रहेगी ॥५१-५२॥ और तेरे अंश से उत्पन्न होने वाली जितनी देवांगनाएँ होंगी, वे तुम्हारी ही भाँति नित्ययौवना किन्तु सन्तानहीना होंगी ॥५३॥ अनन्तर उसी क्षण उस देवी की जिह्वा के अग्र भाग से एक शुक्ल वर्ण की मनोहरा कन्या सहसा उत्पन्न हुई ॥५४॥ वह पीताम्बर धारण किए हुई थी। उसके दोनों हाथ वीणा और पुस्तक से सुशोभित थे। समस्त शास्त्रों की वह अधिष्ठात्री देवी रत्नमय आभूषणों से विभूषित थी ॥५५॥ इसके उपरान्त कुछ काल व्यतीत होने पर वह देवी दो रूपों में प्रकट हुई, जिसके बाँयें भाग से कमला और दाहिने से राधिका का प्रादुर्भाव हुआ ॥५६॥ इसी बीच भगवान् कृष्ण भी दो रूपों में प्रकट होकर दाहिने भाग से दो भुजा वाले श्रीकृष्ण और बाँयें भाग से चार भुजा वाले विष्णु हुए ॥५७॥ भगवान् कृष्ण ने सरस्वती से कहा कि 'तुम विष्णु की पत्नी बनो। यहाँ (मेरे साथ) माननीया राधिका रहेगी। इसी से कल्याण होगा।' इसी प्रकार लक्ष्मी से भी कह कर उन्होंने लक्ष्मी को नारायण (विष्णु) को प्रदान कर दिया। फिर तो जगत्पति (विष्णु) उन दोनों को साथ लेकर वैकुण्ठ चले गए ॥५८-५९॥ मूल प्रकृति रूप

---

१ क. ०न ब्रह्माण्डगो० ।

अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसंभवे। नारायणाङ्गादभवन्पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥६०॥
तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः। बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोटयश्च तत्समाः ॥६१॥
अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने। आसन्नसंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥६२॥
रूपेण सुगुणेनैव वेषाद्वा विक्रमेण च। प्राणतुल्याः प्रियाः सर्वे बभूबु पार्षदा विभोः ॥६३॥
राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः। राधातुल्याश्च सर्वास्ता[1] नान्यतुल्याः प्रियंवदाः ॥६४॥
रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः। अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन संततम् ॥६५॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः। आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥६६॥
देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी। बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥६७॥
देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी। परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥६८॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा। ईषद्धासप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥६९॥
नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥७०॥
यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः। सर्वविश्वस्थिता लोका मोहिता मायया यया ॥७१॥

राधा के अंश से उत्पन्न होने के कारण वे दोनों (लक्ष्मी और सरस्वती) सन्तानहीना हुईं। फिर नारायण (विष्णु) के अंग से विष्णु अनेक पार्षद उत्पन्न हुए, जो तेज, अवस्था, रूप और गुणों में विष्णु के ही समान थे। लक्ष्मी के अंग से करोड़ों दासियाँ उत्पन्न हो गईं, जो उन्हीं के समान थीं ॥६०-६१॥ मुने! अनन्तर गोलोकनाथ (भगवान् श्रीकृष्ण) के लोम-कूपों से असंख्य गोप उत्पन्न हुए, जो अवस्था और तेज में उन्हीं के समान थे ॥६२-॥ रूप, उत्तम गुण, वेष और पराक्रम में विभु श्रीकृष्ण के समान वे गोपगण उन्हीं के प्राणप्रिय पार्षद हुए ॥६३॥ ऐसे ही राधा जी के लोम-कूपों से बहुत-सी गोपकन्याएँ उत्पन्न हुईं, जो राधा के समान ही अनुपम मधुरभाषिणी थीं ॥६४॥ रत्नों के भूषणों से भूषित एवं निरन्तर स्थिर यौवन वाली वे सभी स्त्रियाँ भगवान् कृष्ण के (पहले) शाप के कारण सन्तानहीन हुईं ॥६५॥

विप्र! इसी बीच भगवान् कृष्ण की देह से सनातनी विष्णु माया दुर्गा सहसा प्रकट हुई ॥६६॥ इन्हें नारायणी, ईशाना एवं सर्वशक्तिस्वरूपिणी कहा जाता है। ये परमात्मा कृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥६७॥ देवियों की बीज रूप, मूल प्रकृति, ईश्वरी, परिपूर्णतमा, तेजःस्वरूपा, तीनों (सत्त्व, रज, तम) गुणमयी, तप्त सुवर्ण के समान वर्ण वाली, करोड़ों सूर्य के समान चमकने वाली, मन्द मुसुकान से सुशोभित प्रसन्न मुख वाली और सहस्र भुजाओं वाली हैं ॥६८-६९॥ तीन नेत्रों वाली वे दुर्गा अनेक भाँति के शस्त्रास्त्रों को हाथों में लिये रहती हैं। वे अग्निशुद्ध वस्त्रों एवं रत्नों के आभूषणों से विभूषित हैं। ॥७०॥ समस्त स्त्रियाँ उनके अंश की कला से उत्पन्न हुई हैं और उनकी माया समस्त विश्व को मोहित करने में समर्थ हैं ॥७१॥ वह सकाम भाव से उपासना करने

---

१ क. स्ता राधादास्यः प्रि०।

सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहमेधिनाम्। कृष्णभक्तिप्रदात्री च वैष्णवानां च वैष्णवी॥७२॥
मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी। स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीः सा गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ॥७३॥
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा सा नृपेषु च। या चाग्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे॥७४॥
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना। सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि॥७५॥
यया च शक्तिमानात्मा यया वै शक्तिमज्जगत्। यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम्॥७६॥
या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी। स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा[1] च नारद॥७७॥
क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः। शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी॥७८॥
सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुपस्थितः। रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः॥७९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः। पद्मनाभनाभिपद्मान्निःससार पुमान्मुने॥८०॥
कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः। चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥८१॥
सुदती सुन्दरी श्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा। वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता॥८२॥
रत्नसिंहासने रम्ये स्तुता वै सर्वकारणम्। उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा॥८३॥

वाले गृहस्थों को सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। वही कृष्णभक्ति देने वाली तथा विष्णु-भक्तों के लिए विष्णुरूप-धारिणी भी हैं॥७२॥ वे मोक्ष चाहने वालों को मोक्ष और सुखेच्छुकों को सुख प्रदान करती हैं। वही स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी और गृहस्थों के घर गृहलक्ष्मी के रूप में रहती हैं। वही तप करने वालों में तपस्या रूप से, राजाओं में राजलक्ष्मी रूप से, अग्नि में दाहिका रूप से, भास्कर में प्रभारूप से, चन्द्रमा में शोभारूप से, कमलों में सौन्दर्य रूप से तथा परमात्मा श्रीकृष्ण में समस्त शक्ति रूप से विराजमान रहती हैं॥७३-७५॥ उनसे आत्मा तथा सारा जगत् शक्तिमान् होता है और उनके बिना समस्त जगत् जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥७६॥ नारद! वे इस संसार रूपी वृक्ष के लिए बीजस्वरूपा हैं। वे स्थितिरूपा, बुद्धिरूपा और फलरूपा भी हैं॥७७॥ वही क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा, निद्रा, तन्द्रा (आलस्य), क्षमा, धृति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति, और कान्ति आदि रूपा हैं। अनन्तर वे देवेश कृष्ण की स्तुति करके उनके सामने खड़ी हो गईं। राधिकेश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) ने उन्हें रत्नसिंहासन प्रदान किया॥७८-७९॥ मुने! इसी बीच स्त्री सहित ब्रह्मा वहाँ आये। ब्रह्मा विष्णु के नाभिकमल से प्रकट हुए थे। ॥८०॥ वे तपस्वी, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, कमण्डलुधारी और ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ब्रह्मा श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। उस समय सैकड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्ति वाली, सुन्दर दाँतों वाली तथा अग्निशुद्ध वस्त्र एवं रत्न-निर्मित आभूषणों से अलंकृत वह सुन्दरी देवी उन सर्वकारण (श्रीकृष्ण) की स्तुति करके पतिदेव के साथ श्रीकृष्ण के सामने रत्नमय सिंहासन पर आनन्दपूर्वक बैठ गईं॥८१-८३॥ इसी समय भगवान्

---

१ क. ०पा व्रतरू०।

एवस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः। वामार्धाङ्गो महादेवो दक्षिणो गोपिकापतिः ॥८४॥
शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः। त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः ॥८५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः। भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥८६॥
दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्वभूषणभूषितः। बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ॥८७॥
प्रजपन्पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वम् ॥८८॥
कारणं कारणानां च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥८९॥
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातो मृत्युंजयाभिधः। रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेः पुरः ॥९०॥

इति श्री० म० प्र० नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिर्नाम द्वितीयाऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

अथाण्डं तज्जलेऽतिष्ठद्यावद्वै ब्रह्मणो वयः। ततः स्वकाले सहसा द्विधारूपो बभूव सः ॥१॥
तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः। क्षणं रोरूयमाणश्च स शिशुः पीडितः क्षुधा ॥२॥

श्रीकृष्ण ने दो रूप धारण किये। उनका बायाँ आधा अंग महादेव हुआ और दाहिने आधे अंग से वे गोपीपति (श्रीकृष्ण) ही रहे ॥८४॥ महादेव की कान्ति शुद्ध स्फटिकमणि के समान थी। एक अरब सूर्य के समान वे प्रकाशमान थे। वे त्रिशूल और पट्टिश धारण किये हुए थे। बाघम्बर पहने हुए थे। उनकी जटाओं की आभा तपाये हुए सुवर्ण जैसी थी। अंगों में भस्म रमा हुआ था। मुख पर मुसकराहट और मस्तक पर चन्द्रमा की शोभा हो रही थी। वे दिगम्बर (नग्न), नीलकंठ तथा सर्पों के आभूषणों से विभूषित थे। उनके दाहिने हाथ में सुसंस्कृत रत्नमाला थी। वे (अपने) पांच मुखों से ब्रह्मज्योतिः स्वरूप, सनातन, सत्यरूप, परमात्मा, ईश्वर, कारणों के कारण, समस्त मंगलों के मंगल, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा भय को हरने वाले और मृत्यु की भी मृत्यु भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके 'मृत्युञ्जय' कहलाये और भगवान् के सम्मुख ही उनकी आज्ञा से रमणीक रत्न सिंहासन पर आसीन हो गए ॥८५-९०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में देव और देवी की उत्पत्ति नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

विराट् स्वरूप बालक का वर्णन

श्री नारायण बोले--वह अण्डा ब्रह्मा की पूरी आयु तक उस जल में पड़ा रहा। अनन्तर समय पूरा हो जाने पर वह सहसा दो खण्डों में विभक्त हो गया ॥१॥ उसके मध्य भाग में एक शिशु अवस्थित था, जिसकी प्रभा सैकड़ों सूर्यों के समान थी। वह शिशु माता-पिता से परित्यक्त तथा जल के भीतर आश्रय-रहित था। इस-

पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः। नैकब्रह्माण्डनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत्॥३॥
स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट्। परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाऽप्यसौ॥४॥
तेजसां षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः। आचारोऽसंख्यविश्वानां महाविष्णुः[1] सुरेश्वरः॥५॥
प्रत्येकं रोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च। अद्यापि तेषां सख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः॥६॥
यथाऽस्ति संख्या रजसां विश्वानां न कदाचन। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते॥७॥
प्रतिविश्वेषु सन्त्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। पातालाद् ब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्॥८॥
तत ऊर्ध्वे च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद्बहिरेव सः। स च सत्यस्वरूपश्च शश्वन्नारायणो यथा॥९॥
तदूर्ध्वं चैव गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात्। नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाऽप्ययम्॥१०॥
[2]सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता। एकोनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यवनान्विता ॥११॥
ऊर्ध्वं सप्त सुवर्लोका ब्रह्मलोकसमन्विताः। पातालानि च सप्ताधश्चैवं ब्रह्माण्डमेव च॥१२॥
ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परः। स्वर्लोकस्तु ततः पश्चान्महर्लोकस्ततो जनः॥१३॥
ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः। ततः परो ब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः॥१४॥
एवं सर्वं कृत्रिमं तद्बाह्याभ्यन्तर एव च। तद्विनाशे[3] विनाशश्च सर्वेषामेव नारद॥१५॥

लिए भूख से पीड़ित होकर रोने लगा। वह अनेकों ब्रह्माण्डों का अधिनायक था। उसी ने अनाथ की भाँति ऊपर की ओर दृष्टिपात किया॥२-३॥ वह स्थूल से भी स्थूल था। इसलिए उस देव का नाम 'महाविराट्' हुआ। जैसे परमाणु सूक्ष्मतम होता है वैसे वह स्थूलतम था।॥४॥ वह परमात्मा श्रीकृष्ण के तेज का सोलहवाँ अंश था। वही असंख्य विश्वों का आधार एवं देवों का अधीश्वर 'महाविष्णु' है॥५॥ उसके प्रत्येक लोमकूपों में समस्त विश्व स्थित हैं, जिनकी संख्या बताने में भगवान् श्रीकृष्ण भी आज असमर्थ हैं॥६॥ प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देव वर्तमान हैं। कदाचित् रजःकण को गिना जा सकता है, किन्तु उस विराट् के शरीर में स्थित विश्व, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि की संख्या नहीं बतायी जा सकती। पाताल से ब्रह्मलोक तक 'ब्रह्माण्ड' कहा जाता है॥७-८॥ उसके ऊपर वैकुण्ठ लोक है जो ब्रह्माण्ड से बाहर है। वह नारायण की तरह नित्य सत्यस्वरूप हैं॥९॥ उसके ऊपर पचास करोड़ योजन के विस्तार में गोलोक स्थित है, जो भगवान् की भाँति नित्य और सत्यस्वरूप है॥१०॥ यह पृथिवी सात द्वीप और सात समुद्र, उनचास उपद्वीप और असंख्य वनों से युक्त है॥११॥ इसके ऊपर ब्रह्मलोक सहित सात सुवर्लोक और नीचे सात पाताल अवस्थित हैं। इसी समस्त को 'ब्रह्माण्ड' कहा गया है॥१२॥ पृथ्वी से ऊपर भूलोक, उससे ऊपर भुवर्लोक, ततः पर स्वर्गलोक, ततः पर महर्लोक, ततः पर जनोलोक, ततः पर तपोलोक, ततः पर सत्यलोक और उससे ऊपर तपे हुए सुवर्ण के समान बना हुआ ब्रह्मलोक विराजमान है॥१३-१४॥ ये सभी कृत्रिम हैं। कुछ तो ब्रह्मांड के भीतर हैं और कुछ बाहर। नारद! ब्रह्माण्ड का

---

१ क. ०ष्णुश्च प्राकृतः। २ क. ०पमयी पृ०। ३ क. नाशश्च नाशाय स०।

जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम्। नित्यौ गोलोकवैकुण्ठौ सत्यौ शश्वदकृत्रिमौ॥१६॥
लोमकूपे च ब्रह्माण्डं प्रत्येकं तस्य निश्चितम्। एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्यापि का कथा॥१७॥
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः। तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक॥१८॥
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः। भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽधो नागाश्च चराचराः॥१९॥
अथ कालेन स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः। डिम्भान्तरं च शून्यं च न द्वितीयं कथंचन॥२०॥
चिन्तामवाप[1] क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः। ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम्॥२१॥
ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम्॥२२॥
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम्। जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम्॥२३॥
वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम्। मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासाविवर्जितः॥२४॥
ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि। निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो वरः
रोगमृत्युजराशोकपीडादिपरिवर्जितः ॥२५॥

विनाश होने पर इन सबका विनाश हो जाता है। क्योंकि जल के बुलबुले के समान सारा जगत् अनित्य है। इनमें केवल गोलोक और वैकुण्ठ लोक नित्य, अविनाशी और अकृत्रिम हैं॥१५-१६॥ उस विराट् शिशु के प्रति लोम-कूप में अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं, जिनकी संख्याएँ भगवान् कृष्ण भी नहीं जानते अन्य की तो बात ही क्या॥१७॥ पुत्र! प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव आदि तीन करोड़ देवों की संख्या विद्यमान है॥१८॥ चारों ओर दिशाओं के अधीश्वर, दिक्पाल, ग्रह, नक्षत्र सभी इसमें सम्मिलित हैं। पृथ्वी पर चार वर्ण हैं। नीचे नागलोक हैं, जहाँ चराचर सभी अवस्थित हैं॥१९॥

इसके अनन्तर वह विराट् बालक बार-बार ऊपर देखता रहा। किन्तु वह गोलाकार पिण्ड बिलकुल खाली था। दूसरी कोई भी वस्तु वहाँ नहीं थी॥२०॥ इससे वह क्षुधित बालक चिन्तित होकर बार-बार रुदन करने लगा। अनन्तर उसे ज्ञान हुआ और वह परम पुरुष भगवान् कृष्ण का ध्यान करने लगा। उसमें उसे सनातन ब्रह्म-ज्योति दिखायी पड़ी, जो नूतन जलधर की भाँति श्यामल, दो भुजाधारी और पीताम्बर पहने हुए मुसकरा रही थी। उसके हाथ में मुरली थी। भक्तों पर अनुग्रह करने वाले उस मूर्ति रूप पिता ईश्वर को देखकर वह बालक अत्यन्त मुदित होकर हँस पड़ा॥२१-२३॥ तदुपरान्त वरेश भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर उसे समुचित वर प्रदान किया— वत्स! मेरे समान ज्ञानी, क्षुधा-पिपासा से रहित होकर प्रलयकाल पर्यन्त तुम असंख्य ब्रह्माण्डों का आश्रय बनो। कामनारहित और निर्भय होकर सबके लिए श्रेष्ठ वरदायक बनो। तथा रोग, मृत्यु, जरा एवं शोक, की पीड़ा आदि से रहित हो॥२४-२५॥ इतना कहकर उसके दाहिने कान में षडक्षर महामंत्र का तीन बार जप किया। यह उत्तम

---

१ क. ०प शुष्कोष्ठो रु० ।

इत्युक्त्वा तद्दक्षकर्णे महामन्त्रं षडक्षरम्। त्रिः कृत्वा प्रजजापाऽऽदौ वेदागमपरं वरम्॥२६॥
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्। वह्निजायान्तमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम्॥२७॥
मन्त्रं दत्त्वा तदाऽऽहारं कल्पयामास वै प्रभुः। श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते॥२८॥
प्रतिविश्वेषु नैवेद्यं दद्याद्वै वैष्णवो जनः। षोडशांशं विषयिणी विष्णोः पञ्चदशास्य वै॥२९॥
निर्गुणस्याऽऽत्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च। नैवेद्येन च कृष्णस्य नहि किंचित्प्रयोजनम्॥३०॥
यद्ददाति च नैवेद्यं यस्मै देवाय यो जनः। स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीदृष्ट्या पुनर्भवेत्॥३१॥
तं च मन्त्रं वरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः। वर अन्यः क इष्टस्ते तं मे ब्रूहि ददामि ते॥३२॥
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच महाविराट्। अदन्तो बालकस्तत्र वचनं समयोचितम्॥३३॥

महाविराडुवाच

वरं मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला। संततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा॥३४॥
त्वद्भक्तियुक्तो यो लोके जीवन्मुक्तः स संततम्। त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः॥३५॥
किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन[1] यजनेन च। व्रतेनैवोपवासेन [2]पुण्य तीर्थनिषेवया॥३६॥
कृष्णभक्तिविहीनस्य पुंसः स्याज्जीवनं वृथा। येनाऽऽत्मना जीवितश्च तमेव नहि मन्यते॥३७॥

मंत्र वेद का प्रधान अंग है॥२६॥ इसके आदि में 'ओं' का स्थान है। बीच में चतुर्थी विभक्ति के साथ 'कृष्ण' ये दो अक्षर हैं। अन्त में अग्नी की पत्नी 'स्वाहा' सम्मिलित हो जाती है। इस प्रकार 'ओं कृष्णाय स्वाहा' मंत्र का स्वरूप है। यह मंत्र सर्वविघ्ननाशक है॥२७॥ ब्रह्मपुत्र नारद! प्रभु श्रीकृष्ण ने उसे मंत्र देकर उसके भोजन की जो व्यवस्था की वह मुझसे सुनो॥२८॥ प्रत्येक विश्व में वैष्णव जन जो नैवेद्य अर्पित करते हैं, उसका सोलहवाँ अंश व्यापक विष्णु को प्राप्त होता है और शेष पन्द्रह भाग इस विराट् बालक के लिए निश्चित हैं, क्योंकि यह बालक स्वयं परिपूर्णतम भगवान् कृष्ण का विराट् रूप है। और उस नैवेद्य से श्रीकृष्ण को कोई प्रयोजन नहीं है॥२९-३०॥ मनुष्य जिस देवता के लिए जो नैवेद्य समर्पित करता है, वह देव उसका भक्षण कर लेता है, किन्तु लक्ष्मी की दृष्टि से वह पुनः वैसा ही हो जाता है॥३१॥ इस प्रकार श्रेष्ठ मन्त्र उस बालक को प्रदान कर प्रभु ने पुनः उससे कहा—अब दूसरा कौन वर तुम्हें प्रिय है? मुझे बताओ, मैं देने के लिए तैयार हूँ॥३२॥ भगवान् कृष्ण की ऐसी बात सुन कर उस दन्तहीन महाविराट् बालक ने समयोचित बात कही॥३३॥

महाविराट् ने कहा—आपके चरण-कमलों में मेरी नित्य निश्चल भक्ति हो। मेरी आयु चाहे क्षणिक हो या दीर्घकाल की; किन्तु जब तक मैं जीवित रहूँ तब तक आपमें मेरी भक्ति बनी रहे॥३४॥ क्योंकि लोक में जो आपकी भक्ति से युक्त है वह निरन्तर जीवन्मुक्त होता है और जो आपकी भक्ति से रहित है वह मूर्ख जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है॥३५॥ उसे जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास और पुण्य तीर्थों के सेवन से क्या लाभ हो सकता है?॥३६॥ कृष्णभक्तिहीन पुरुष का जीवन, ही व्यर्थ है। क्योंकि वह जिस आत्मा से

---

१ क. ०न पूज०। २ क. पुण्येन तीर्थसे०

यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स्याच्छक्तिसंयुतः। पश्चाद्यान्ति गते तस्मिन्न स्वतन्त्राश्च शक्तयः॥३८॥
स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः। स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः॥३९॥
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद। उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम्॥४०॥

श्रीकृष्ण उवाच

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाऽहं त्वं तथा भव। असंख्यब्रह्मणां पाते पातस्ते न भविष्यति॥४१॥
अंशेन प्रतिविश्वाण्डे त्वं च पुत्र विराड् भव। त्वन्नाभिपद्मे ब्रह्मा च विश्वस्रष्टा भविष्यति॥४२॥
ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव तु। शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहरणाय वै॥४३॥
कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः। पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति॥४४॥
मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे। ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम्॥४५॥
मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम्। यामि लोकं[1] तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत॥४६॥
गत्वा[2] च नाकं ब्रह्माणं शंकरं स उवाच ह। स्रष्टारं स्रष्टुमीशं[3] च संहर्तारं च तत्क्षणम्॥४७॥

जीवित रहता है उसी को नहीं मानता॥३७॥ शरीर में जब तक आत्मा रहता है तब तक शक्तियों से उसका संयोग होता है, और पश्चात् आत्मा के चले जाने पर शक्तियाँ भी चली जाती हैं। क्योंकि शक्तियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं॥३८॥ महाभाग! प्रकृति से परे रहने वाले वही सर्वात्मा, स्वेच्छामय, सर्वादि एवं सनातन ब्रह्मज्योति आप हैं॥३९॥ नारद! इतना कहकर वह बालक चुप हो गया। अनन्तर भगवान् कृष्ण ने कान में मीठी लगने वाली सुन्दर वाणी में कहा॥४०॥

श्रीकृष्ण बोले—मेरे समान तुम भी चिरकाल तक सुस्थिर होकर रहो। असंख्य ब्रह्मा के पतन होने पर भी तुम्हारा पतन नहीं होगा॥४१॥ पुत्र! प्रत्येक ब्रह्माण्ड में तुम अंशतः विराजमान रहोगे। तुम्हारे नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा विश्व के स्रष्टा (रचयिता) होंगे॥४२॥ ब्रह्मा के ललाट प्रदेश से ग्यारह रुद्र शिव के अंश से आविर्भूत होकर सृष्टि का संहार करेंगे॥४३॥ उनमें एक रुद्र कालाग्नि नाम से प्रसिद्ध होगा, जो विश्व का संहार करेगा। रुद्र के अंश से सृष्टि-रक्षक विष्णु प्रकट होगा॥४४॥ तुम मेरे वरदान से मेरी भक्ति प्राप्त करोगे, और ध्यान से मेरे सुन्दर रूप का नित्य दर्शन करोगे, यह निश्चित है॥४५॥ वत्स! उसी प्रकार मेरे वक्षःस्थल पर स्थित अपनी सुन्दरी माता का भी दर्शन करोगे। मैं अब अपने लोक को जा रहा हूँ, तुम यहीं रहो। इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये॥४६॥ स्वर्ग जाकर उन्होंने सृष्टि करने में समर्थ ब्रह्मा और क्षण भर में सृष्टि का संहार करने वाले शंकर को भी आज्ञा दी॥४७॥

---

१ क. लोके ति०। २ क. ०त्वा स्वलोकं ०। ३ क. मीशश्च सं०।

श्रीकृष्ण उवाच

सृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव। महाविराड् लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधेः शृणु ॥४८॥
गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव। अंशेन च महाभाग स्वयं च रुचिरं तपः ॥४९॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत। जगाम नत्वा तं ब्रह्मा शिवश्च शिवदायकः ॥५०॥
महाविराड्लोमकूपे ब्रह्माण्डे गोलके जले। स बभूव विराट् क्षुद्रो विराडंशेन सांप्रतम् ॥५१॥
श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके। ईषद्धासः प्रसन्नास्यो विश्वरूपी जनार्दनः ॥५२॥
तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः। संभूय पद्मदण्डं च बभ्राम युगलक्षकम् ॥५३॥
नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः। नाभिजस्य च पद्मस्य चिन्तामाप पितामहः ॥५४॥
स्वस्थानं पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्। ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥५५॥
शयानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते। यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तं च तत्परमीश्वरम् ॥५६॥
श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम्। तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः ॥५७॥
बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः। ततो रुद्राः कपालाच्च शिवस्यैकादश स्मृताः ॥५८॥
बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः। चतुर्भुजश्च भगवाञ्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥५९॥

श्रीकृष्ण बोले—वत्स! सृष्टि रचना के लिए तुम जाओ। विधे! महाविराट् के एक रोमकूप में स्थित क्षुद्र विराट् पुरुष के नाभिकमल से प्रकट होओ। फिर रुद्र को संकेत करके कहा—वत्स महादेव! जाओ। महाभाग! तुम भी अंशतः ब्रह्मा के भाल से उत्पन्न होकर चिरकाल तक तपस्या के लिए स्वयं प्रस्थान करो ॥४८-४९॥ नारद! जगत् के नाथ (भगवान् श्रीकृष्ण) इतना कह कर चुप हो गये। अनन्तर ब्रह्मा और कल्याणप्रद शिव भी उन्हें नमस्कार करके चले गये ॥५०॥ महाविराट् के रोमकूप में जो ब्रह्माण्ड-गोलक का जल है, उसमें वे महाविराट् पुरुष अपने अंश से क्षुद्र विराट् हो गये, जो इस समय भी विद्यमान है ॥५१॥ वे श्यामवर्ण, युवक, पीतवस्त्रधारी तथा जलरूपी शय्या पर सोने वाले हैं। वे प्रसन्नमुख विश्वव्यापी प्रभु जनार्दन कहलाते हैं ॥५२॥ उन्हीं के नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए और उसके अंतिम छोर का पता लगाने के लिए वे उस कमलदण्ड में एक लाख युगों तक चक्कर लगाते रहे ॥५३॥ किन्तु नाभि से उत्पन्न होने वाले उस कमल का और उसके दण्ड के ओर-छोर का पता न चलने से पितामह ब्रह्मा चिन्तित हो गए ॥५४॥ तब वे पुनः अपने स्थान पर आकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान करने लगे। अनन्तर दिव्य दृष्टि के द्वारा उन्हें क्षुद्र विराट् रूप का दर्शन प्राप्त हुआ। ब्रह्माण्ड गोलक के भीतर जलमय शय्या पर वे पुरुष सोये हुए थे। फिर जिनके रोमकूप में वह ब्रह्माण्ड था, उन महाविराट् पुरुष के तथा उनके भी महाप्रभु श्रीकृष्ण के भी दर्शन हुए। साथ ही गोलोकधाम का भी दर्शन हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्ण की स्तुति की और उनसे वरदान पाकर सृष्टि का कार्य आरंभ कर दिया ॥५५-५७॥ सर्वप्रथम ब्रह्मा से सनकादि चार मानस पुत्र उत्पन्न हुए और पश्चात् उनके ललाट से शिव के अंशभूत ग्यारह रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥५८॥ उस क्षुद्र विराट् के बायें भाग से सृष्टिपालक भगवान् विष्णु प्रकट हुए, जो चार भुजाधारी हैं। वे श्वेत द्वीप में निवास करने लगे ॥५९॥ क्षुद्र विराट् के नाभिपद्म से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने समस्त विश्व—स्वर्ग, मर्त्यलोक और पाताल—के

क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज सः। स्वर्गं मृत्युं च पातालं त्रिलोकं सचराचरम् ॥६०॥
एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च। प्रतिविश्वं क्षुद्रविराड्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥
इत्येवं कथितं वत्स कृष्णसंकीर्तनं शुभम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदनारायणसंवादे विश्वब्रह्माण्ड-
वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं सर्वमपूर्वं च त्वत्प्रसादात्सुधोपमम्। अधुना प्रकृतीनां च व्यासं वर्णय भोः प्रभो ॥१॥
कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता। केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता मुने ॥२॥
कवचं स्तोत्रकं ध्यानं प्रभावं चरितं शुभम्। काभिः काभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती। सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥४॥

चराचर सहित तीनों लोक का निर्माण किया ॥६०॥ इस प्रकार उसे (महाविराट् के) प्रत्येक लोम कूप में विश्व निहित हैं और उन विश्वों में पृथक्-पृथक् क्षुद्र विराट् (महाविष्णु)—ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवगण स्थित हैं ॥६१॥

वत्स! इस प्रकार मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का शुभ संकीर्तन तुम्हें सुना दिया, जो सुखद, मोक्षप्रद और साररूप है। अब क्या सुनना चाहते हो? ॥६२॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में विश्व-ब्रह्माण्ड-वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

सरस्वती-पूजा का विधान तथा कवच

नारद बोले—प्रभो! आपकी कृपा से मैंने सारा अमृतोपम वृत्तान्त सुन लिया, अब प्रकृतियों का व्यष्टि रूप में वर्णन कीजिये ॥१॥ मुने! किस देवी की पूजा सर्वप्रथम किसने की है और वह मर्त्यलोक में कैसे प्रकाशित हुई। वहाँ किसने किसकी पूजा की और किसने किसकी स्तुति की ॥२॥ उनके कवच, स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव एवं चरित के साथ-साथ यह भी मुझे बताने की कृपा कीजिये कि किन्होंने किनको वर दिये हैं ॥३॥

नारायण बोले—गणेश की माता दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री, इन्हीं पांच रूपों में प्रकृति

आसां[1] पूजा प्रभावश्च प्रसिद्धः परमाद्भुतः। सुधोपमं च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥५॥
प्रकृत्यंशाः कलायाश्च तासां च चरितं शुभम्। सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानं निशामय ॥६॥
वाणी वसुंधरा गङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका तुलसी मानसी निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा।
तेजसा मत्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥८॥
संक्षेपमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम्। जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम्॥९॥
दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत्। तच्च पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्क्रमतः शृणु ॥१०॥
आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता। यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः ॥११॥
आविर्भूता यदा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः। इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥१२॥
स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम्। तामुवाच हितं सत्यं परिणामसुखावहम् ॥१३॥

श्रीकृष्ण उवाच

भजान्नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम्। युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ॥१४॥
कामदं कामिनीनां च तासां तं कामपूरकम्। कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलान्यक्कृतमन्मथम् ॥१५॥
कान्ते कान्तं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि। त्वत्तो बलवती राधा न ते भद्रं भविष्यति ॥१६॥
यो यस्माद्बलवान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः। कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः ॥१७॥

सृष्टिविधान के अवसर पर प्रकट हुई थी॥४॥ इनकी पूजा और प्रभाव परम अद्भुत एवं प्रसिद्ध है। इनका अमृतोपमचरित्र समस्त मंगलों का कारण है॥५॥ ब्रह्मन्! जो प्रकृति की अंशभूता और कलास्वरूपा देवियाँ हैं, उनके पुण्य चरित्र तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥६॥ वाणी (सरस्वती), वसुन्धरा (पृथ्वी), गंगा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मानसी, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा—ये देवियाँ तेज, रूप, गुण में मेरे समान हैं। संक्षेप में मैं इनका पुण्यदायक तथा श्रवणसुखद चरित्र और जीवों का सुन्दर कर्म-विपाक भी बताऊँगा ॥७-९॥ दुर्गा और राधिका के महान् विस्तृत चरित को पश्चात् संक्षेप में कहूँगा, अभी क्रमशः सुनो ॥१०॥

मुनिश्रेष्ठ! सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ने ही सरस्वती जी की पूजा आरम्भ की है, जिनकी कृपा से मूर्ख भी पण्डित हो जाता है ॥११॥ भगवान् कृष्ण की स्त्री के मुख से उत्पन्न सरस्वती देवी ने जिस समय कामरूपिणी और कामुकी होकर कृष्ण को पाने की इच्छा प्रकट की, उस समय उनका भाव ताड़कर सर्वज्ञ श्रीकृष्ण ने सबकी माता सरस्वती से हितकर, सत्य और परिणाम में सुखदायक वचन कहा ॥१२-१३॥

श्रीकृष्ण बोले—पतिव्रते! मेरे अंश से उत्पन्न नारायण (विष्णु) चार भुजा धारणकर, मेरे समान ही युवा, सुन्दर और समस्त गुणों से युक्त हैं, तुम उन्हीं की (पत्नी होकर) सेवा करो। वे समस्त कामिनियों की इच्छाओं के पूरक, कामप्रद, करोड़ों कन्दर्प के समान सुन्दर तथा लीला में कामदेव को भी परास्त करने वाले हैं। ॥१४-१५॥ कान्ते! मुझे पतिरूप में स्वीकार कर यदि तुम यहाँ रहना चाहती हो तो राधा तुमसे बलवती हैं, अतः तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥१६॥ सरस्वती! जो जिससे बलवान् होता है, वह उससे अन्य की रक्षा कर सकता है, किन्तु जो स्वयं असमर्थ है, वह दूसरों की रक्षा कैसे कर सकता है? ॥१७॥ मैं सभी का अधीश्वर और

१ ख. आसीत्पूज्या प्रसिद्धा च प्रभावः प०।

सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां राधितुमक्षमः। तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च ॥१८॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः। प्राणतोऽपि प्रियः कुत्र केषां वाऽस्ति च कश्चन ॥१९॥
त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति। पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम् ॥२०॥
विवर्जिता लोभमोहकामकोपेन हिंसया। तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ॥२१॥
तया सार्धं तव प्रीत्या सुखं कालः प्रयास्यति। गौरवं चापि तत्तुल्यं करिष्यति पतिर्द्वयोः ॥२२॥
प्रतिविश्वेषु ते पूजां महतीं ते मुदाऽन्विताः। माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥२३॥
मानवा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः। सन्तश्च योगिनः सिद्धाः नागगन्धर्वकिंनराः ॥२४॥
मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे यथाविधि। भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचारांश्च षोडश ॥२५॥
काण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च। जितेन्द्रियाः संयुताश्च पुस्तकेषु घटेऽपि च ॥२६॥
कृत्वा सुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम्। कवचं ते ग्रहीष्यन्ति कण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥२७॥
पठिष्यन्ति[1] च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते। इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजितः ॥२८॥
ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ॥२९॥
सर्वे देवाश्च मनवो नृपा वा मानवादयः। बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥३०॥

शासक हूँ पर, राधा का शासक होने में असमर्थ हूँ; क्योंकि वह तेज, रूप और गुणों में मेरे ही समान है ॥१८॥ वह मेरे प्राणों की अधिष्ठात्री देवी है। फिर भला प्राणों का परित्याग कौन कर सकता है? जबकि प्राण से भी अधिक प्रिय कोई किसी का नहीं है ॥१९॥ अतः भद्रे! तुम वैकुण्ठ जाओ, वहाँ तुम्हारा कल्याण होगा। उन ईश्वर (विष्णु) को पतिरूप में स्वीकार कर चिरकाल तक सहर्ष सुख का अनुभव करो ॥२०॥ वहाँ लक्ष्मी भी तुम्हारी ही भाँति लोभ, मोह, काम, क्रोध और हिंसा भाव से रहित तथा तेज, रूप और गुणों में तुम्हारे ही समान हैं ॥२१॥ उसके साथ प्रीतिपूर्वक रहने से तुम्हारा जीवन सुखमय होगा और (तुम्हारे) पति महोदय दोनों का आदर भी समान भाव से करेंगे ॥२२॥ सुन्दरी! मेरे वर के प्रभाव से प्रत्येक विश्व में हर्षित मानवगण, मनुगण, देवगण, मुमुक्षु, मुनीन्द्र, सन्त, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और किन्नर प्रत्येक कल्प में माघशुक्ल पञ्चमी को विद्यारम्भ के अवसर पर तुम्हारा महान् पूजोत्सव करेंगे। उस समय वे भक्ति के साथ षोडशोपचार पूजन करेंगे। उन संयमशील जितेन्द्रिय पुरुषों के द्वारा कण्वशाखा में कही हुई विधि के अनुसार तुम्हारा ध्यान और पूजन होगा। वे कलश या पुस्तक में तुम्हारा आवाहन करेंगे। तुम्हारे कवच को भोजपत्र पर लिखकर उसे सोने की डिब्बी में रख गंध एवं चन्दन आदि से सुपूजित करके लोग अपने गले में अथवा दाहिनी भुजा में धारण करेंगे ॥२३-२७॥ पूजाकाल में तथा उसके उपरान्त विद्वान् लोग तुम्हारा स्तुति-पाठ करेंगे। इतना कहकर सर्वपूजित भगवान् श्रीकृष्ण ने उस देवी की पूजा की ॥२८॥ अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, अनन्त, धर्म और मुनीन्द्र सनकादिकों ने भी उस देवी की पूजा की ॥२९॥ इस प्रकार समस्त देवगण, मनु-वृन्द, राजगण और मानव आदि के द्वारा वह देवी समस्त लोकों से नित्य पूजित होने लगी ॥३०॥

---

१ क. भविष्य०।

नारद उवाच

पूजाविधानं स्तवनं ध्यानं कवचमीप्सितम्। पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं वा चन्दनादिकम् ॥३१॥
वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम। वर्धते सांप्रतं शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥३२॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम्। जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥३३॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च। पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्र स्यात्संयतः शुचिः ॥३४॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः। संपूज्य[1] देवषट्कं च नैवेद्यादिभिरेव च ॥३५॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। संपूज्य संयतोऽग्रे च ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥३६॥
ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे बुधः। ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारैस्तां पूजयेद्व्रती ॥३७॥
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम्। वक्ष्यामि सांप्रतं किंचिद्यथाधीतं यथागमम् ॥३८॥
नवनीतं दधिं क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकान्। इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥३९॥
स्वस्तिकं शर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम्। अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥४०॥
घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यैर्व्यञ्जनैस्तथा। यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥४१॥

नारद बोले—हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप सरस्वती देवी की पूजा का विधान, स्तवन, ध्यान, अभीष्ट कवच, पूजोपयोगी नैवेद्य, पुष्प तथा चन्दन आदि बताने की कृपा करें! इस कर्णसुखद विषय को सुनने के लिए सम्प्रति मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है॥३१-३२॥

नारायण बोले—नारद! मैं तुम्हें काण्व शाखा में कही हुई पद्धति बताता हूँ, जिसमें जगन्माता सरस्वती का पूजाविधान निरूपित है ॥३३॥ माघ की शुक्ल-पञ्चमी विद्यारम्भ की मुख्य तिथि है। पूर्व दिन में संयम करके उस दिन संयमशील एवं पवित्र हो स्नान और नित्य क्रिया के पश्चात् कलश-स्थापन करे। फिर नैवेद्य आदि उपचारों से छहों देवों—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती की—सर्व प्रथम अर्चना करके पश्चात् इष्टदेव (सरस्वती) की अर्चना करे॥३४-३६॥ बुद्धिमान् व्रती आगे कहे जाने वाले ध्यान-मंत्र से बाह्य कलश में उनका ध्यान करके षोडशोपचार से उनका पूजन करे॥३७॥ पूजा के उपयुक्त वेदानुसार जो-जो नैवेद्य बताये गये हैं उन्हें मैं सम्प्रति अपने शास्त्राध्ययनानुसार बता रहा हूँ॥३८॥ नवनीत (मक्खन), दही, क्षीर (दुग्ध), धान का लावा, तिल के लड्डू, सफेद गन्ना और उसका रस, गुड़, मधु, स्वस्तिक (एक प्रकार का पकवान) शक्कर या मिश्री, सफेद धान का चावल जो टूटा न हो (अक्षत), बिना उबाले हुए धान का चिउड़ा, सफेद लड्डू, घी और सेंधा नमक डालकर तैयार किये गये व्यंजन के साथ शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँ के आटे से घृत में तले हुए पदार्थ, पके हुए स्वच्छ केले का पिष्टक, उत्तम अन्न को घृत में पकाकर उससे बना हुआ

---

१ क. ०ज्य संयतोऽभीष्टं नै०।

पिष्टकं स्वतिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च। परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम् ॥४२॥
नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम्। पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम् ॥४३॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं शुक्लं सुसंस्कृतम्। सुगन्धि शुक्लपुष्पं च गन्धाढ्यं शुक्लचन्दनम् ॥४४॥
नवीनं शुक्लवस्त्रं च शङ्खं च सुमनोहरम्। माल्यं च शुक्लपुष्पाणां मुक्ताहीरादिभूषणम् ॥४५॥
यद्दृष्टं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्तं श्रुतिसुन्दरम्। तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ॥४६॥
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम्। [1]कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ॥४७॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम्। रत्नसारेन्द्रखचितवरभूषणभूषिताम् ॥४८॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥४९॥
एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः। संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥५०॥
येषां स्यादिष्टदेवीयं तेषां नित्यं शुभं मुने। विद्यारम्भे च सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥५१॥
सर्वोपयुक्तमूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः। येषां यदुपदेशो वा तेषां तन्मूलमेव च
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥५२॥

अमृत के समान मधुर मिष्टान्न, नारियल, नारियल का जल, केशर, मूली, अदरक, पका केला, सुन्दर श्रीफल (बेल), बेर और देशकालानुसार उपलब्ध ऋतुफल तथा अन्य भी पवित्र स्वच्छ वर्ण के फल (ये नैवेद्य तथा) सुगंधित श्वेत पुष्प, अधिक गन्धवाला श्वेत चन्दन, नूतन श्वेतवस्त्र, अत्यन्त मनोहर शंख, श्वेत पुष्पों की माला और मोती, हीरा आदि के आभूषण सरस्वती देवी को अर्पण करना चाहिए ॥३९-४४॥ वेद में जो उनका प्रशस्त ध्यान बताया गया है, वह कर्णसुखावह और भ्रमभञ्जनककारी है। उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥४५॥

सरस्वती का श्रीविग्रह शुक्लवर्ण, मन्द मुसकान से युक्त अत्यन्त मनोहर, करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से युक्त पुष्ट और शोभासम्पन्न है ॥४६॥ वे अग्निशुद्धवस्त्र पहने हुई, मुसकराती हुई, अत्यन्त मनोहर तथा रत्नों के सार भाग से बने उत्तम आभूषणों से भूषित हैं ॥४७॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों, श्रेष्ठ मुनियों, मनुओं एवं मनुष्यों द्वारा वन्दित एवं सुपूजित उन सरस्वती की मैं भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ ॥४८॥ इस प्रकार ध्यान करके मूल मंत्र से पूजन की सभी सामग्री सरस्वती को समर्पित कर दे। फिर कवच का पाठ करके बुद्धिमान् साधक देवी को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करे ॥४९॥ मुने! यह देवी जिन लोगों को इष्ट हो जाती हैं, उन्हें नित्य कल्याण की प्राप्ति होती है। विद्यारम्भ के दिन और वर्ष के अन्त में माघ-शुक्ल-पञ्चमी के दिन सभी को सरस्वती देवी की पूजा करनी चाहिए। 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' यह वैदिक अष्टाक्षर मूल-मंत्र परम श्रेष्ठ एवं सबके लिए उपयोगी है। अथवा जिनको जिस मंत्र के द्वारा उपदेश प्राप्त हुआ है, उनके लिए वही मूल-मंत्र है। 'सरस्वती' शब्द

---

१. क. सूर्य०

श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा। लक्ष्मीमायादिकं चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥५३॥
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मिकाय कृपानिधिः। प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते॥५४॥
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि। चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा॥५५॥
भृगवे च ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे। आस्तीकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसंन्निधौ ॥
विभाण्डक। ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥५६॥
शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने। सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च॥५७॥
शेषः पाणिनये चैव भरद्वाजाय धीमते। ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥५८॥
चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्। यदि स्यात्सिद्धमन्त्रो हि बृहस्पतिसमो भवेत्॥५९॥
कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं विधिना पुरा। विश्वश्रेष्ठं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने॥६०॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद। सर्वज्ञ सर्वजनक [1]सर्वपूजकपूजित ॥६१॥
सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो। अयातयाममन्त्राणां समूहो यत्र संयुतः॥६२॥

के साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़कर अन्त में 'स्वाहा' शब्द लगा लेना चाहिए। इसके आदि में लक्ष्मी का बीज (श्रीं) और मायाबीज (ह्रीं) लगावे। यह (श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा) मंत्र साधक के लिए कल्पवृक्षरूप है। सर्वप्रथम कृपानिधान नारायण ने पुण्यक्षेत्र भारत में गंगा-तट पर वाल्मिकि को यह मंत्र प्रदान किया था फिर सूर्यग्रहण के अवसर पर पुष्कर क्षेत्र में भृगु ने शुक्र को यह मंत्र दिया। फिर चन्द्रग्रहण के अवसर पर मरीचि- नन्दन कश्यप ने प्रसन्न होकर बृहस्पति को प्रदान किया॥५०-५५॥ अनन्तर बदरिकाश्रम में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर भृगु को, जरत्कारु ने क्षीरसागर के तट पर आस्तीक को और विभाण्डक ने मेरुपर्वत पर बुद्धिमान् ऋष्यशृङ्ग को यह मंत्र बताया॥५६॥ मुने! शिव ने कणाद और गौतम मुनि को तथा सूर्य ने याज्ञवल्क्य और कात्यायन को इस मंत्र का उपदेश किया। अनन्त शेष ने पाताल में बलि की सभा में उस मंत्र को प्राप्त करके, पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज तथा शाकटायन को यह मंत्र बता दिया॥५७-५८॥ चार लाख जप करने से मनुष्यों को इसकी सिद्धि होती है। मंत्र के सिद्ध हो जाने पर मनुष्य बृहस्पति के समान (विद्वान्) होता है॥५९॥

विप्रेन्द्र! पूर्वकाल में गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मा ने भृगु को जो विश्व में सर्वश्रेष्ठ तथा विश्व पर विजय दिलाने वाला कवच प्रदान किया था, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो! ॥६०॥

भृगु बोले—ब्रह्मन्! आप ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ, ब्रह्मज्ञान में विशारद, सर्वज्ञाता, सबके जनक और सबके पूज्य हैं॥६१॥ प्रभो! मुझे सरस्वती का 'विश्वजय' नामक कवच बताने की कृपा करें, जिसमें सद्यः फलदायक मंत्रों का समूह सम्मिलित है॥६२॥

---

१ क. सर्वेश सर्वपू०।